

'मेरा ध्येय सारी दुनिया से मैं
विश्वबन्धुत्व के लिये हम जियेंगे और
विश्वबन्धुत्व के लिए हम मरेंगे।'

'मेरा मिशन केवल हिंदुस्तानी जनता की एकता नहीं है। मेरा मिशन केवल हिंदुस्तान की आजादी नहीं है, चाहे आज भले ही मेरा लगभग पूरा जीवन और मेरा सब समय ही उसमें लगा हुआ है। मगर मैं तो हिंदुस्तान की आजादी के द्वारा मानव मात्र की एकता का मिशन पूरा करना चाहता हूँ।'

प्रतीक

द्वैमासिक साहित्य-संकलन

५

शिशिर

सपादक

सियारामशरण गुप्त

नगेंद्र

श्रीपतराय

स० ही० वात्स्यायन

क्रम-सूची :

प्रकाशक—प्रतीक १४ हेस्टिंग्स रोड इलाहाबाद । मुद्रक—सरस्वती प्रेस, काशी



अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥
प्र यदग्ने सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानव ।
अप नः शोशुचदघम् ॥
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥
स नः सिंधुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये ।
अप नः शोशुचदघम् ॥

—ऋग्वेद १।९७।१,५-८

'अपनी शिखाओं से हमारा अघ दूर करके हे अग्नि ! अपने प्रकाश से शुभ लाओ।
तुम्हारी किरणें सब ओर जाती हैं। सब ओर तुम्हारा मुख है, अतएव तुम सब ओर से रक्षा करते हो हमारा अघ दूर करके।
शत्रुओं के द्वेष से नौका बनकर हम पार कर दो।
वह नौका की भाँति हमें सिन्धु के पार हमारे कल्याण के लिए ले जाता है, अपनी शिखाओं से हमारा अघ दूर करके।'

नव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय ।
तस्मादसक्त सतत कार्य कर्म समाचर
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुष. ।

—श्रीमद्भगवद्गीता, ३।१८-१९

'उसके लिये न कृत कर्म में स्वार्थ है, न अकृत में, उसका कोई उद्देश्य ससार में किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं करता है।

इसलिये असक्त भाव से सदा कर्तव्य पर आचरण कर अनासक्त कर्माचरण से ही पुरुष परम तत्व को पाता है।'

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि
सब्बगथपहीनस्स परिलाहो न विज्जति।
उय्युजति सतीमतो न निकेते रमति ते
हस व पल्लल हित्वा ओकमोक जहति ते ॥
पठवीसमो नो विरुज्झति इन्द्र खीलूपमो तादि सुब्बतो ।
रहदो' व अपेतकद्दमो ससारा न भवति तादिनो ॥

—धम्मपद, अरहंतवग्गो

'जिसने अपनी यात्रा पूरी कर ली है, जो विशोक है, जो सर्वथा मुक्त है, जिसने सब ग्रथियाँ काट दी हैं, उसे कोई पीडा नहीं सताती।

मनस्वी सदा आगे बढता है, वह गेह में नहीं रमता, वह घर-बार वैसे ही तज देता है जैसे हस अपने सरोवर को।

पृथ्वी के समान वह अविचलित होता है, इद्र की कीली के समान वह दृढ होता है, स्वच्छ सरोवर के समान वह निष्कलुष होता है। ऐसे व्यक्ति को ससार का क्रम नहीं बाँधता।'

ही हैथ शोड दी, ओ मन हूट इज गुड,
एड हूट डथ दि लार्ड रिक्वायर आफ दी,

बट टु इ जस्टली, एंड टु लव मर्सी,

एंड टु वाक हम्ब्ली विद दाइ गाड ?

—बाइबल, मोरस्थीय माइका की वाणी

'रे मानव, उसने तुझे दिखा दिया है कि सत् क्या है, और परमात्मा तुझसे क्या चाहता है—इसके अतिरिक्त क्या कि तू न्याय्य आचरण करे, करुणा को अपनावे और विनीत भाव से परमात्मा का अनुगामी हो ?'

वला तक़ूलू लिमईं युक़्तलु फी सबीलिल्लाहि अम्वात्—

बल् अह्याऊँ वला किन् ला तशउरून् ।

क़ुरान, सूरा १ पारा २, रुकू ३

'मत कहो मुर्दा उन्हें, जो कि ईश्वर की राह पर बलि होते हैं। वे जिंदा है, लेकिन तुम इसका शऊर नहीं रखते।'

सूरा एह न आखियन जो लरनि दलाँ में जाय

सूरे सोई नानका जो मरणु हुकम रजाय ।

हिरदै जिनके हरि बसै, सो जन कहियहि सूर

कही न जाई नानका पूरि रह्या भरपूर ॥

—श्रीगुरु ग्रन्थ साहब

———

तुम कहाँ, शांति के सार्थवाह ?

हे ज्योतिवाह,

हो गये अस्त, युग का विकाल
किस महायज्ञ का रक्तदान
आक्षितिज महाबुधि हुआ लाल
अकुलायी अचला भक्ति मौन
शिव शक्तिहीन, करतल पर मुख, झुक गया भाल
मरुतों की आभा क्षीण, वरुण हतप्रभ अस्थिर
उद्विग्न, क्षुब्ध, कर रहे तराजू के पलड़ों को इधर-उधर।
यम निष्प्रभ, नचिकेता के
प्रश्नों को दुहराते बार बार
जो अनुत्तरित रह गये
स्वर्ग भू की सीमा के आर पार।
दिग्वधुओं का मुख तमाच्छन्न
झुक गया व्योम अवसन्न खिन्न
लुट गयी विश्व की श्री-सुषमा, उजड़ा सुहाग
खो गया प्रतीची के कल्मष में प्राची का अनुराग राग।
पथ पंकिल पग पग रक्त-स्नात
सूझता पसारे नहीं हाथ
रुक गया कारवाँ त्रस्त नस्त
हिंसक पशुओं से भरी राह,
मानवता कातर अश्रुसिक्त
हिचकी ले ले भर रही आह
तुम कहाँ शांति के सार्थवाह !

—'सुमन'

महाप्रयाण

रवि सुता के शांत तट पर

लक्ष कंठों से उठे जय घोष से पूर्णाभिनादित,
लक्ष हृदयों की प्रणतियों मूक स्तुतियों से सुवदित,
लक्ष नयनों के सलिल से धौत स्नात शुभाभिसिंचित,
पुण्य वपु किसका हुताशन देव को होता समर्पित—
अगरु-चंदन आज्य पुष्पोपायनों से सुरभि शुचिकर?
एकटक तकते किधर रे आज जग के नारि नर सब!
ज्योतिमुख वह अर्द्ध प्रेरित कौन जाता महामानव
आज चालिस कोटि कंठों से विवश क्यों रुदन का स्वर
फूटता रे, द्रवित अस्सी कोटि दृग वह रहे झर झर?
कौन जीवन ज्योति जाती तिमिर मज्जित विश्व को कर?
आज खंडित देश का मेरे हृदय शतधा विखंडित,
विश्व के निर्माण सपनों का विमल प्रासाद भंजित,
भग्न-खंडित देश के स्वातंत्र्य की तप-साधना रे,
खंडिता निर्मल अहिंसा-सत्य की आराधना रे,
सत्य शिव चिति जा रही तज देश का मोहांध अंतर!
सत्य शिव चिति—बुद्ध में जगमग हुई जो फिर तिरोहित,
प्रकट ईसा में पुन जो 'क्रूस' पर जा हुई विघटित,
अवतरित गांधी व्रती के बुद्धि मन वाणी हृदय में
लीन होती अब वही रे शून्य के भास्वर निलय में—
मनुज पशु के हस्त से वंचित प्रतारित ध्वस्त होकर।
लो चली वह दृष्टि—करके पार जो शत वासना घन
देखती नर लक्ष्य ध्रुव थी निष्कलंक निर्भय अकंपन,
बुद्धि वह—मानव प्रगति का केन्द्रगामी सूत्र थामे
नयन करती विश्व जन का त्राण शत संकट पथों में,
मृदु हृदय—दुर्नीतिवादों का सदा करता निरादर।

मुँद गये वे दृग अमते जो रहे करुणा भुवन पर,
मूक वाणी सत्य सी तेजोमयी निर्मल अभयकर,
शांत रे वह ज्योति जिसके रश्मि-कण ले सैकड़ों जन
मृत्यु-तम आक्रांत जग में बढ़ रहे थे साहसी बन—
शक्ति के पीड़न प्रलोभन दीप्ति की अवहेलना कर।
सरसती नर-चित्त भू की प्रेम वल्ली का प्रसिंचन,
लहरती मद-द्वेष लिप्सा ज्वाल का दुर्गम प्रशमन,
लोभमोहोत्ताप मूर्च्छित मनुज की सद्वृत्तियों का—
मधुर-कोमल स्पर्श से उद्बुद्ध करता प्राण कंपन
बह गया सहसा अतल में वह अवनि का अमृत निर्झर!
अस्त रे मानव गगन का आज भास्वर-ज्ञान दिनकर,
गुप्त-संचित तीस सदियों का तप फल नयन-गोचर,
जननि के कारा-सदन में मुक्ति दीपक की कला धर
अस्त रे भारत कलाधर सौख्य-रजनी का सुधाकर
रो रहीं कर याद दिशियाँ, शैल वन नद, अवनि अंबर!

—देवराज

—माँग रहे हैं समाधान

१

कब, कहाँ पाप इतने छल-बल से व्याप्त हुआ
निर्दयता से करुणा का स्रोत समाप्त हुआ
किस लोक और किस युग में किसको प्राप्त हुआ
इतनी भीषण पशुता
दानवता का प्रमाण ?
मानवता जैसे फाँक रही है राख धूर
संस्कृति जैसे कूड़ा-कर्कट का एक घूर
सभ्यता हो गयी है लज्जा से चूर-चूर
हैं छिन्न भिन्न विलुप्त
काल, जीवन, जहान !

भू माँग रही है इस घटना का समाधान,
कण माँग रहा है इस घटना का समाधान
नभ माँग रहा है इस घटना का समाधान
गण माँग रहे हैं इस घटना का समाधान
जन माँग रहे हैं इस घटना का समाधान
मन माँग रहा है इस घटना का समाधान !

२

सुकरात संत ने पिया जहर का प्याला था
मीरा ने उसको चरणामृत कर डाला था
ऋषि दयानन्द को पड़ा उसी से पाला था
हस्तियाँ उसी पैमाने की
विष पीती हैं !
हजरत ईसा को चढ़ा दिया था सूली पर
तन था नश्वर, लेकिन आत्मा थी अविनश्वर
वह आज किये घर कितनों के मन के अंदर
वह वर्तमान, सदियों पर
सदियाँ बीती हैं !

हम बापू को रख सकते थे कब तक अगोर,
हैं जन्म निधन जीवन डोरी के ओर छोर,
कितना महान आदर्श हमें वे गये छोड़।
कौमें ऊँचे आदर्शों से
ही जीती हैं।

३

जो गोली खाकर गिरी मरी वह थी छाया
है अजर अमर उसके आदर्शों की काया
भारत ने जिनको युग युग तपकर उपजाया
थे हाड मास के व्यक्ति नहीं
बाबा गाँधी।
जो पकड़ गया वह तो है केवल छाया
कितने दिल में षड्यन्त्री ने आश्रय पाया
कितने कुत्सित भावों ने उसको दी काया
वह एक नहीं है इस पातक का
अपराधी।
मन के अन्दर तिलमिलाकर नफरत ने पूजी
की प्रतिमा, अपने से पूछो, कितनी पूजी ?
जिस भव्य भावना के प्रतीक थे बापूजी
तुमने कितनी वह अपने
जीवन में साधी ?

—'बच्चन'

जवाब इसका कौन दे ?

जवाब इसका कौन दे ?
किसे अब इतना होश है
कि आज हिंद किसके सोग में सियाहपोश है ?
यह किसका खून बह गया
यह कौन जाते जाते दिल का राज सबसे कह गया
यह कौन कत्ल हो गया
फिसानए हयात कौन कहते कहते सो गया
जवाब इसका कौन दे ?
कि खुद हमारे हाथ इस लहू में हैं रँगे हुए
वह जिन्दगी का राजदाँ—वह बेकसों का पासबाँ—
वतन का मीरे कारवाँ नज़र से दूर हो गया
वह जाम जो झलक रहा था
हुर्रियत के मैकदे में देर से महक रहा था
चूर चूर हो गया
नज़र से दूर हो गया
वह बूढा जिस्म, हड्डियों का एक काँपता बदन
मगर उसी में इस कदर जवाँ लहू था मौजेजन
कि जिसकी बूँद बूँद में बसी थी उल्फते-वतन
लहू जो आज बह गया
वह बूढा जिस्म मर गया
मगर वह काम कर गया
जिसे वो जीते जी न अपने आगे पूरा कर सका ।
तमाम उम्र दर से अम्नो आश्ती दिया किया
तमाम उम्र जो इसी उमीद पे जिया किया
कि एक दिन जरूर सारे तफरिके मिटायगा
फसाद का ये खोखला तिलस्म टूट जायगा ।
वही बुजुर्गे खान्दाँ
वही हमारा पासबाँ
हमीं से आज छुट गया,
सुहाग मादरे वतन का अपने हाथों लुट गया ।

—'वामिक'

गांधीजी के प्रति

सवत् १९९२ वि०

सत महात्मा हो तुम जग के बापू हो हम दीनों के
दलितों के अभीष्ट वरदाता आश्रय हो गतिहीनों के
आर्य अजातशत्रुता की उस परपरा के स्वत प्रमाण
सदय बन्धु तुम विरोधियों के निर्दय सुजन अधीनों के।

सवत् १९९३ वि०

व्यक्त तुम्हारा बाह्य हमारे वर्तमान का अन्तर्भाग
किंतु तुम्हारे अतरग में उठा अतीत हमारा जाग
बापू व्यग्र भविष्य हमारा मिले तुम्हारा सुमन पराग
भारत माता के मदिर में सग्रह रहे तुम्हारा त्याग।

माघ कृष्ण ५-२००४ वि०

अरे राम! कैसे हम झेलें अपनी लज्जा उसका शोक
गया हमारे ही पापों से अपना राष्ट्र पिता परलोक!

—मैथिलीशरण गुप्त

श्रद्धांजलि

(१)

हाय, हिमालय ही पल में हो गया तिरोहित
ज्योतिर्मय जल से जन धरणी को कर प्लावित!
हाँ हिमाद्रि ही आज उठ गया भू से निश्चिन
रजत वाष्प सा अंतर्नभ में हो अंतर्हित!
आत्मा का वह शिखर, चेतना में लय क्षण में
व्याप्त हो गया सूक्ष्म चाँदनी सा जनमन में!
मानवता का मेरु, रजत किरणों से मंडित,
अभी अभी चलता था जो जग को कर विस्मित,
लुप्त हो गया! लोक चेतना के क्षत पट पर
अपनी स्वर्गिक स्मृति की अक्षय छाप छोड़कर!

आओ, उसकी अक्षय स्मृति को नींव बनाएँ
उसपर संस्कृति का लोकोत्तर भवन उठाएँ!
स्वर्णशुभ्र धर सत्य कलश सर्वोच्च शिखर पर,
विश्वप्रेम में खोल अहिंसा के गवाक्षर!

(२)

आज प्रार्थना से करते तृण तरु भर मर्मर,
सिमटा रहा चपल कूलों को निस्तल सागर!
निनत नीलिमा में नीरव नभ करता चिंतन
श्वास रोक कर ध्यान मग्न सा हुआ समीरण!
क्या क्षणभंगुर तन के हो जाने से ओझल
सूनेपन में समा गया यह सारा भूतल?
नाम रूप की सीमाओं से मोह मुक्त सा
या अरूप की ओर बढ़ाता स्वप्न के चरण?

ज्ञात नहीं पर द्रवीभूत हो दुख का बादल
बरस रहा अब नव्य चेतना में हिम उज्ज्वल,
बापू के आशीर्वाद सा ही अंतस्तल
सहसा ज्यों भर गया सौम्य आभा से शीतल!
खादी के उज्ज्वल जीवन सौंदर्य पर सरल
भावी के सतरँग सपने कँप उठते झलमल!

(३)

देव पुत्र था निश्चय वह जन मोहन मोहन
सत्य चरण धर जो पवित्र कर गया धराकण!
विचरण करते थे उसके संग विविध युग वरद
राम, कृष्ण, चैतन्य, मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद!
उसका जीवन, मुक्त रहस्य कला का प्रांगण,
उसका निश्छल हास्य स्वर्ग का था वातायन!
उसके उच्चादर्शों से दीपित अब जन मन,
उसका जीवन स्वप्न राष्ट्र का बना जागरण!

निखिल सभ्यता की कृत्रिमता से हो पीड़ित
वह जीवन सारल्य कर गया जन में जाग्रत!
यान्त्रिकता के विषम भार से जर्जर भू पर
मानव का सौंदर्य प्रतिष्ठित कर देवोत्तर!
आत्मदान से लोक सत्य को दे नव जीवन
नव संस्कृति की शिला रख गया भू पर चेतन!

(४)

हिम किरीटिनी, मौन आज तुम शीश झुकाए?
सौ वसंत हों निर्मम अंगों में कुम्हलाए!
वह जो गौरव शृंग धरा का था स्वर्गोज्ज्वल
टूट गया वह! हुआ अमरता में निज ओझल!
लो, जीवन सौंदर्य ज्वार पर आता गांधी,
उसने फिर जन सागर में आभा पुल बाँधी!

खोलो मा, फिर बादल सी निज कबरी श्यामल,
जन मन के शिखरों पर चमकें विद्युत के पल!
हृदय हार सुरधुनी तुम्हारी जीवनचंचल,
स्वर्ग श्रोणि पर शीश धरे सोया विंध्याचल!
गज रदनों से शुभ्र तुम्हारे जघनों में घन
प्राणों का उन्मादन जीवन करता नर्तन!
तुम अनंत यौवना धरा हो, स्वर्गांकांक्षित,
जन को जीवन शोभा दो, भू हो मनुजोचित!

—सुमित्रानंदन पंत



सम्यक् पुरुष को देखो !

महान् विभूतियों के तिरोधान पर शोक-प्रकाशन, संबंधियों से समवेदना, दिवंगत आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करने की परिपाटी है ।

किंतु जिसका प्रयाण हमारे संपूर्ण जीवन को, हमारी समस्त विश्वास- परंपरा को, हमारे पूरे कर्म-संचय को, और हमारी घनीभूत मानव संवेदना को एक जाज्वल्यमान चुनौती बनकर हमारे बीच में ही रह गया है, उसका तिरोधान कैसा, और उस पर शोक कैसा ? समग्र मानवता को जिसने अपनाया, विश्वमैत्री के लिए जो जिया और मरा, जो स्वयं मूर्तिमान समवेदना रहा, उसके किस अपने को इतर जनों से पृथक् किया जाय ? और शांति ! यदि देह-कारा मुक्त आत्मा को अनुभूति है, यदि प्रार्थनाएँ कहीं पहुँचती हैं, तो शांति की वह भास्वर प्रतिमा ही उनकी शांति के लिए प्रार्थना कर रही होगी, जिनके बीच से वह उठ गयी !

'प्रतीक' केवल उस जीवन की चुनौती के सामने स्तब्ध स्वर से उसी वाक्य की आवृत्ति करता है, जो उन्नीस सौ वर्ष पहले क्रूस पर टँगे हुए ईसा को देखकर जनता के मुँह से बरबस निकल पड़ा था 'एक्सी होमो'— मानव को देखो, पुरुष को देखो !

—या०

प्रेहि प्रेहि पथिभि पूर्व्येभिर्यत्रा न पूर्वे पितर परेयु ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यम पश्यासि वरुण च देवम् ॥
स गच्छस्व पितृभि. स यमेनेष्टा पूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्य पुनरस्तमेहि स गच्छस्व तन्वा सुवर्चा ॥

—ऋग्वेद, १०।१४।७-८

"जाओ, उस प्राचीन मार्ग से जाओ
जिससे हमारे पितर पुरा काल में गये ।
वहाँ तुम दोनों देवो को, वरुण और
यम को, स्वधा ग्रहण करते देखोगे ।
यम से मिलो, पितरों से मिलो, परम स्वर्ग में
सुसपादित कर्मों के पुण्य का लाभ करो ।
पाप को छोड पुन नवगृह को प्राप्त हो,
नया आलोकमय तन धारण करो ।"

ऊपर राष्ट्रपिता गांधी की अस्थियाँ राष्ट्रनेता जवाहरलाल की रक्षा में त्रिवेणी ले जा रही हैं।
नीचे अस्थियाँ प्रवाहित करने के समय विमान से पुष्पवर्षा।



भगवतशरण उपाध्याय

संस्कृतियों का अंतरावलंबन

सभ्यता सामाजिक विकास की एक मंजिल है, वह मंजिल जब मनुष्य अपनी बर्बरता छोड़, एकाकी पाशविक जंगलीपन छोड़, सचेत ग्राम जीवन बिताने लगा था, जब उसने आग का प्रयोग सीखा और अपना आहार रांधकर खाने लगा, जब उसने कृषि का आरंभ किया और यह जाना कि गोल पहिया ही चिपटी जमीन पर घूम-दौड़ सकता है, संक्षेप में, जब वह दल अथवा सभा में बैठ सकने की तमीज रखने लगा।

संस्कृति एक प्रकार का मानसिक विकास है, एक विशिष्ट दृष्टिकोण, जो सभ्य मानव में हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता। वह एक प्रकार का संस्कार है, मानसिक निखार, और यह संस्कार व्यक्तिगत भी हो सकता है, सामूहिक भी। यहाँ हमारा उद्देश्य सामूहिक संस्कृति पर विचार करना है। मनुष्यों का सचेत समुदाय समाज का निर्माण करता है, समुदाय समाज का पंजर है, सामूहिक चेतना उसका प्राण। जब सामाजिक मान्यताएँ किसी समूह विशेष की अपनी और अन्य समूहों से भिन्न हो जाती हैं, जब इन उचित-अनुचित मान्यताओं के अर्थ वह समूह त्याग और बलिदान करने पर तत्पर और आतुर हो जाता है, जब वह समूह अपने अतीत और इतिहास को अपना से भिन्न मान उसमें अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित यश पर गर्व करता है और स्वयं अपनी भावी महत्वाकांक्षाओं के धागे उस पर रखता है तब उसकी सामाजिक सत्ता 'राष्ट्र' अथवा 'नेशन' होती है। सुदूर के समान पूर्वज की संतति होने का विश्वास, समान धर्म, समान अंधविश्वास, समान त्रास और समान उल्लास, समान प्रयास और समान पार्थिव आवास की सीमाएँ इस समूह विशेष अथवा राष्ट्र को आंतरिक घनता प्रदान करती हैं। ऋग्वैदिक मंत्र (१०।१९१।२) 'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' में इसी सम्मिलित प्रयास, सम्मिलित सलाप विलाप, सम्मिलित नाद, सम्मिलित मानसिक चेष्टाओं वाञ्छनाओं की ओर संकेत है। इसी प्रकार—**समानो मन्त्र समिति समानी समान मन सह चित्तमेषाम्। समानी व आकूति समाना हृदयानि व, समान मस्तु वो मनो यथा व सुसहासति** (ऋग्वेद, १०।१९१।३ और आगे) आदि में भी उसी संयुक्त प्रयास, सम्मिलित विश्वास और सामूहिक संघात की प्रेरणा और निर्देश है। संस्कृति इसी समुदाय विशेष का अभिकृत, आहृत, आदृत, व्यवहृत रूप है। राष्ट्र अथवा यह समुदाय जिन पूर्वकालिक प्रयत्नों, चेष्टाओं, कीर्तियों, भावनाओं, दर्प

निषादों, विजय पराजयों, आचार विचारों, वेश भूषाओं, साहित्य कलाओं, नृत्य गाथाओं, विभिन्नताओं आदि को धारती केवल अपनी, करके घोषित करता है यही उसे आकृति देती है, उसका कायिक निर्माण करती और उसे रूपरेखा प्रदान करती हैं। इन्हीं विशेषताओं से राष्ट्र अथवा नेशन पहचाना जाता और अन्य मानव दलों से पृथक किया जाता है। इन्हीं अवयवों से उसका व्यक्तित्व बनता है।

इस सिद्धान्त और 'प्रतिज्ञा' के अनुसार सांस्कृतिक अहमत्व और अपनापा ही संस्कृति विशेष का प्राण है, परंतु यही उस पर गहरा व्यंग भी है—व्यंग अथवा, सत्यतः, मिथ्या धारणा। वस्तुतः किसी सामाजिक दल अथवा राष्ट्र की अपनापा जैसी कोई वस्तु न कभी रही है, न रह सकती है। निस्सन्देह समय-समय पर, अवस्था विशेष में, सचेत मानव समूह ने प्रयत्नतः अथवा अज्ञानतः अपनी क्रियाओं धारणाओं में विशेषताएँ निर्मित की हैं, परंतु समाज-चेतना अथवा सामाजिक व्यवहार ने स्वयं उनको चिरकाल तक उस दल-विशेष की नहीं रहने दिया है। शीघ्र ही उनको अन्य दलों ने स्वायत्त कर लिया है और स्वायत्त करके कालान्तर में न केवल उन्हें वे अपना बताने लगे हैं, वरन उन पर मरने मिटने भी लगे हैं। स्वयं 'सामाजिक'—सामूहिक—व्यवहार की समष्टि में वह व्यष्टि निहित है जिसकी अभिव्यक्ति में एक तात्विक विरोध है। जिस सामाजिक चेतना के फलस्वरूप व्यक्ति व्यक्ति का पारस्परिक व्यवहार दल अथवा सङ्घ समाज की सृष्टि करता है, वही दल दल, समाज-समाज में भी एक अस्पष्ट संबंध स्थापित करती है। सामाजिक व्यवहार संबंध पर निर्भर करता है, और इस व्यवहार का बाह्य रूप आदान प्रदान है, व्यक्ति-व्यक्ति में, दल दल में, समाज समाज में। जातियों का संक्रमण, पारस्परिक संबंध, विवाहादि, युद्ध, व्यापारिक विनिमय इन आदान प्रदानों के आधार हैं। इनकी अनिवार्य अवज्य स्थिति के कारण यह संभव नहीं कि समाज विशेष अथवा राष्ट्र विशेष की मान्यता विचित्रता अपनी बनी रह सके। जाने अनजाने वह औरों की हो ही जाती है, राष्ट्र का संकोच, उसकी व्यावहारिक रूढ़िवादिता, उसे औरों की होने से नहीं रोक सकती, नहीं रोक सकी है। सांस्कृतिक प्रजनन और प्रसार का यही स्वाभाविक प्राकृतिक नियम है, यही उसका अनिवार्य विधान है, यही उसका सूक्ष्म रहस्य है।

परिणामतः इस निष्कर्ष का अर्थ यह है कि जिस विचित्रता या विशेषता को समाज विशेष अथवा राष्ट्र विशेष अन्यों से भिन्न अपना कहता है वह संभवतः उसका नहीं, औरों का है, जिसे वह औरों का और विजातीय कहता है वह संभवतः उसका है, केवल उसी का, औरों का नहीं। संस्कृति तत्वतः एक की नहीं, अनेक की है, उसकी अभिव्यक्ति बहुमुखिक और मिश्रित है। वह एक अविशेषित (मैं जान-बूझकर इस शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ) परंपरा है जिसका निर्माण मनुष्य अपने सामाजिक विकास के क्रम में अपने व्यवहारिक जीवन में अनायास करता जाता है। जैसे बच्चा अपने पारिवारिक

वातावरण में अपने आप सीखता है वैसे ही समाज विशेष अपने समाज परिवारों के व्यवहारिक वातावरण मे अपने आप सीखता है। इससे राष्ट्र विशेष अथवा समाज विशेष की संस्कृति विशेष की कल्पना शायद खरी समीक्षा से अवैज्ञानिक सिद्ध होगी। वस्तुत संस्कृति एकदेशीय नहीं, अन्तर्देशीय, अन्तर्जातीय, अन्त सामाजिक है। संस्कृतिया के स्वावलम्बन का कोई अर्थ नहीं होता, उनके *अंतरावलंबन* मात्र की वैज्ञानिकता सिद्ध है, ग्राह्य है।

देश विशेष की सीमा पर समन्वित समाज विशेष के सुदूर क्षितिज पर अन्य जाति अपने संक्रमण काल मे मँडराने लगती है, भूमि पर जरा थाहने की भाँति सँभाल सँभाल, टोह टोहकर जब वह आगे बढती है, उसका आकार स्पष्ट होने लगता है। देशी राष्ट्र अथवा जाति मे उसके प्रति प्रतिक्रिया होती है। दोनों के समीप आते ही संघर्ष छिड जाता है। दोनो एक काल तक साथ हो घृणा और अविश्वास से एक दूसरे के आचार व्यवहार, संगठन संस्था को देखते हैं, एक दूसरे की मान्यताओं की उपेक्षा करते, उनका उपहास करते हैं। परन्तु संघर्ष के बाद एक प्रकार का समन्वय होता है जिसके फलस्वरूप एक के आचार व्यवहार, संगठन संस्थाएँ दूसरे की हो जाती हैं। यह इस सामाजिक समन्वय की व्यंगात्मक वास्तविकता है। हमले होते हैं, संघर्ष होते हैं, जातियाँ घुल मिलकर एक हो जाती हैं, संस्कृतियाँ समन्वित हो जाती हैं, फिर हमले होते हैं, फिर वही क्रम चलता है, यही सांस्कृतिक समन्वय होता है। यह चिरकालिक नित्य सत्य है। कालान्तर मे, क्रमिक युगान्तो मे, जब जब समाज विशेष अपने पिछले आँकडे सहेजेगा, ('स्टाक टेकिंग' करेगा) तब-तब वह पायेगा कि उसकी अनेक प्राचीन मान्यताएँ अब मान्यताएँ नहीं रहीं, घृणाओं मे बदल गयी हैं, घृणाएँ मान्यताएँ हो गयी हैं, प्राचीन रूढियाँ खो गयी हैं, विश्वास की नयी कोंपलें फूट निकली हैं। फिर आँकडे सहेजिए फिर वही बात, फिर वही और फिर वही। अत संस्कृतिया का स्वावलम्बन नहीं अंतरावलम्बन है।

इस सिद्धांत के निरूपण के अर्थ अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, वस्तुत वे एक समूचे ग्रंथ की सामग्री प्रस्तुत करेंगे। यहाँ हम कुछ एक, केवल कुछ एक के उदाहरण पेश करेंगे। संस्कृति मे वेश भूषा, कला, साहित्यादि का विशिष्ट स्थान होता है इसमे पहले हम इन्हीं पर विचार करेंगे।

प्राचीन से प्राचीन काल म भी भारतवर्ष में वसन के क्षेत्र मे केवल दो वस्त्र—धोती और शाल या चादर—प्रयुक्त होते थे। आर्यों के आने के बाद 'उष्णीष' (पगडी), 'द्रापी' (एक प्रकार की बडी) और नारियों के लिए एक प्रकार के कचुक का प्रचलन हुआ। इनमें द्रापी आर्यों के मध्य एशिया से संपर्क का परिणाम था। प्राचीन हिंदू काल मे भी प्राय उष्णीष (जनतब), उत्तरीय (चादर) और अधोवस्त्र (धोती)

का ही प्रयोग रहा। इनको बिना सिले ही प्रयोग में लाया जाता था, इसी कारण एक आध सूत्रकारों ने तो सुई से सिले वस्त्रों का व्यवहार वर्जित ही कर दिया, यद्यपि वैदिक साहित्य में सुई और उससे सिले वस्त्रों का हवाला मिलता है। कमसे कम द्रापी को तो बिना सिले प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। परन्तु पश्चात्कालीन वह सारी भारतीय वेष भूषा जो आज राष्ट्रीय कही जाने लगी है, वास्तव में अभारतीय है और भारतीय इतिहास के विविध आक्रमकों की देन है। **अचकन** जिसे मुगलों, विशेषकर लखनऊ के नवाबों, ने परिष्कृत कर प्राय आज का रूप दिया, वास्तव में प्रथम शती ईसवी में कुषाणों ने भारत में चलाया था। कुषाण-कालीन कुषाण सैनिकों के वेश से यह स्पष्ट है। मथुरा सग्रहालय में प्रदर्शित स्वय कुषाण नरेश कनिष्क की मूर्ति के वसन से यह प्रमाणित है। यही अगरखा या अचकन मध्य एशियाई 'चोगा' है जो रोमन 'टोगा' का भाषा तथा आकार में रूपातर मात्र है। भारतीय कुरता उस हिंदू ग्रीक सपर्क का फल है जो ग्रीक विजेताओं ने अपने प्राय दो सदियों के शासन में भारत को दिया था। ग्रीक कुरते को 'ख्यूनिक' कहते थे। दोनों की आकृति में अतर नहीं के बराबर था। 'कुरता' शब्द की व्युत्पत्ति करनी आज असभव है, परतु इसमें सदेह नहीं कि इसका सबध किसी विदेशी भाषा से है और सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, किसी से इसकी अभिसृष्टि नहीं स्थापित की जा सकती। पाजामा भी, जिसका आधुनिक रूप मुसलमानों ने भारत में सँवारा, उन्हीं कुषाणों की देन है। इसका पुराना रूप कुछ सूथन कुछ सलवार का मिला जुला है। पगड़ी का कोई न कोई रूप सारे मध्य एशिया में प्रचलित रहा, आर्य उसके एक रूप को भारत में ले आये। ईरानियों के अपनी पगड़ी उतार और उसका फेटा गले में डाल अपने विजयी की अभ्यर्थना करने की बात कालिदास ने भी कही है। वर्तमान **गाधी टोपी** कुछ तो मध्यकालीन पुर्तगालियों की टोपियों के अनुरूप बनी है पर विशेषकर उन प्राचीन मिस्रियों और खसियों की टोपियों के नमूने पर जिन्होंने कभी भारत के पश्चिमी तट से व्यापार किया था। निश्चित है कि भारतीय आभूषण क्षेत्र में नारियों की नथ और कान की उपरली बालियों का प्रवेश मुसलमानों ने कराया। न तो सस्कृत भाषा में इनके लिए कोई शब्द है और न मूर्तिशिल्प में इनका कहीं व्यवहार हुआ है। वस्तुत इनका सबध अरबी के 'नाकिल' से है जिससे हिंदी या उर्दू 'नकेल' बनता है। नकेल वह रस्सी है जिससे मनुष्य अपने पशु की नाक नाथकर उसे ले चलता है। यह मानव प्रभुता का प्रतीक है। पुरुष ने नारी को भी सभवत अपनी इसी प्रभुता के प्रमाणस्वरूप इसे पहना रखा है। आज यह विदेशी नथ हिंदू वैवाहिक जीवन में अनेक स्थानों में सुहाग का चिह्न है?

आश्चर्य की बात है कि रोटी के लिए कोई भारतीय शब्द हमारे पास नहीं है। रोटी शब्द न सस्कृत है, न प्राकृत, न अपभ्रश और न इनसे बना कोई तद्भव ही है। इसी

रूप में यह शब्द भारत की सारी प्रांतीय भाषाओं में—हिंदी, उर्दू, पंजाबी, पश्तो, कश्मीरी, पहाड़ी, सिंधी, उड़िया, बंगला, असमिया, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तामिल, तेलुगू, मलयालम, आदि—में व्यवहृत होता है। निस्संदेह मुस्लिम शासन के युग में कभी इस प्रकार की रोटी सारी भारत ने सीखी जैसी तवे पर बनायी जाती है। तवे के लिए भी कोई भारतीय शब्द नहीं है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि इतने घरेलू शब्द जिनका नित्यप्रति घर की चारदीवारी में व्यवहार होता है और जिनका करोड़ों भारतीय दिन में अनेक बार उच्चारण करते हैं, भारतीय नहीं हैं, विदेशी हैं। संस्कृतियों के अंतरावलंबन का यह एक अद्भुत प्रमाण है। चौके का पावन क्षेत्र भी इन विदेशी शब्दों का वर्जन न कर सका।

भारत के ज्योतिष, ललित कलाओं आदि पर विदेशी प्रभाव अत्यंत गहरा पड़ा है इसे अनेक ईमानदार विद्वान् स्वीकार करते हैं। गणित का यह आश्चर्य—ग्रहण—संभवतः बाबुली है। वैदिक साहित्य में उस रहस्य का पहला जानकार अत्रि कहा गया है। संभव है वही उसका शोधकर्त्ता रहा हो और भारत से ही यह गणित क्रिया बाहर पहुँची हो। गणित में भारतीय चरम सीमा तक पहुँच गये थे और उन्होंने दूर-दूर के देशों को सिखाया था, यह साधारणतया मान्य है, यद्यपि उसका विकास इस स्तर तक इतने प्राचीन काल में हो गया था यह मानने में अनेक लोगों को आपत्ति हो सकती है, जब हम यह देखते हैं कि तीसरी शती ई० पू० तक अभी दहाई का व्यवहार संभवतः अज्ञात था। अशोक के एक शिलालेख में २५६ इस प्रकार लिखा मिलता है—२०० ५० ६। इसके विरुद्ध बाबुल में फलित ज्योतिष का प्रचार और प्रभाव अत्यधिक था। कम से कम तात्कालिक सभ्यताओं में कोई ऐसी न थी जहाँ फलित ज्योतिष का इतना व्यवहार था और जो बाबुल की इस विद्या की ऋणी न थी। ऐसे देश को गणित-ज्योतिष का भी कुछ प्रारंभिक श्रेय देना अयुक्तियुक्त नहीं जब ग्रहण की व्यवस्था वहाँ भी पुरानी है। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि फलित और गणित ज्योतिष के पाये भिन्न भिन्न सिद्धान्तों पर अवलम्बित हैं, फिर भी उनकी समता और पारस्परिक सन्निकटता में संदेह नहीं किया जा सकता।

बाख्त्री ग्रीक राजाओं ने भी भारत में दूसरी सदी ई० पू० से पहली सदी ई० पू० तक प्रायः दो सदियों तक राज किया। और उन्होंने ज्योतिष, कला, साहित्य, दर्शन सबको प्रभावित किया। उनका राशिचक्र आज भारतीय ज्योतिषी सर्वथा अपना कहकर स्वीकार करते हैं। भारतीय ज्योतिष का 'होडाचक्र' और 'होरस्कोप' (अंग्रेजी hour ग्रीक पूर्व-पर्याय से बना है) का रूपांतर है। करोड़ों भारतीय जन्मपत्र के अंध-विश्वास के शिकार हैं, उसकी रचना और फल गणना नित्य की वस्तु है, परंतु उसका आधार अभारतीय है इसे मानने में विद्वान् तो कम से कम संकोच नहीं करता। प्राचीन

में नहीं मिलती) पहनावा मध्य एशियाइ है—चोगा, सलवार, ऊँचे घुटनों तक जूते, बगल में कटार। स्पष्ट है कि भारत में सूर्य की मूर्ति रूप में पूजा शकों ने चलायी और जब यहाँ के ब्राह्मण उसकी पूजा न करा सके तो शक पुरोहितों को भारत में बुलाना पड़ा। पुराणों के अनुसार वृष्णिवंशीय शाम्ब ने सूर्य का पहला मंदिर बनवाया और वह सिंधु देश में। सिंधु देश अब का सिंध है जिसकी प्राचीनकालिक संज्ञा 'शकद्वीप' थी और जो भारत में प्रविष्ट होने पर शकों का पहला औपनिवेशिक आधार बना। आसुरी महाकाव्य *'गिल्गेमिश'* का जलप्लावन *लि*. के *ओल्ड टेस्टामेण्ट और मनुस्मृति में समान* रूप से वर्णित है। मनु जीवों के जोड़ों को उसी तत्परता से बचाते हैं जिससे नूह अपनी नाव में, और भारतीय मनु संतान उस जल प्रलय को भारतीय अनुवृत्त समझती है जब कि डाक्टर लियनार्ड वूली ने प्राचीन अस्सीरी और बाबुली भूमि को उलटकर उस जल-प्रलय का वास्तविक स्थल कहाँ था यह तक प्रमाणित कर दिया है। आसुरी गिल्गेमिश में असुर सूखे अकाल के दैत्य तियामत अप्सू को वज्र मारकर उनको जल मुक्त करने को बाध्य करता है, ऋग्वेद में उसी प्रकार इंद्र सूखे के दैत्य वृत्र को मारकर जल को मुक्त करता है। इंद्र का विरुद वहाँ 'असुर' है और अप्सू की ही भाँति वृत्र भी गुंजलक मारनेवाला सर्प है।

अनेक देशों का मातृ सत्ताक अवस्था से पितृ सत्ताक में परिवर्तन भी इसी सांस्कृतिक एकता को स्थापित करता है। प्राय सभी ने दास-प्रथा का किसी न किसी रूप में लाभ उठाया, और सभी सामंत-युगीय व्यवस्था से गुजरे। प्राय सभी ने नारी को अधोऽध गिराते हुए उसे नि स्वत्व कर दिया और उसे दासों की श्रेणी में रखा। आर्य जातियों में यह क्रम विशेष प्रकार से विकसित हुआ। आज जो प्राय एक ही प्रकार से राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि संस्थाओं का विभिन्न देशों में विकास हुआ है और हो रहा है यह भी इसी सांस्कृतिक अंतरावलंबन तथा आदान प्रदान को प्रमाणित करता है।

२

अब नीचे कुछ अत्यंत रोचक और नवीन प्रमाणों तथा उदाहरणों का उल्लेख करेंगे जिनसे इस सांस्कृतिक अंतरावलंबन के सैद्धांतिक सत्य को पुष्टि मिलेगी।

अन्य साधारण कारणों के साथ साथ जिस मुख्य विशेषता को बताकर आर्य और सेमिटिक जातियों में अंतर निकाला जाता है वह है वैवाहिक। यदि विद्वान् पुराविद् से दोनों में एक पद में अंतर पूछा जाय तो शायद वह कहेगा—**सगोत्र और असगोत्र विवाह**। इसलिए कि पिता के धन में भाग पाकर कन्या पैतृक सम्पत्ति का विभाजन न करा दे, मिस्र और उसकी देखादेखी अरब में 'सेमिटिक' जाति के लोग उसे अपने भाइयों से ही ब्याहने लगे। अरबों ने तो अपनी कन्याओं को कुछ काल

तक जीने भी न दिया। मिस्रियों में यह प्रथा इतनी स्वाभाविक थी कि जब सिकंदर के सेनापति तालेमी ने मिस्र में अपना राज्य स्थापित किया तब देशी भावुकता को प्रसन्न करने के लिए उसे अपने ग्रीक कुल में भी वही भ्राता भगिनी विवाह की मिस्री प्रथा स्वीकार करनी पड़ी और सारे तालेमी राजा अपनी भगिनियों से विवाह करते गये। इतिहास विख्यात क्लियोपेट्रा को एक के बाद दूसरे अपने सगे भाइयों से विवाह करना पड़ा था। अरब में भी इस प्रथा ने जड़ पकड़ी, परंतु मुहम्मद ने उसमें सुधार किया और समान-स्तनपायी भाई बहनों में विवाह संस्कार वर्जित कर दिया। आर्यों में, विशेष कर भारतीय आर्यों में कालांतर में असगोत्र विवाह की प्रथा जन्मी, पर केवल कालांतर में। ऋग्वैदिक काल से पूर्व उनमें भी भ्राता भगिनी विवाह व्यवस्था सम्मत माना जाता था। पुराणों के आधार पर इस प्रकार के आर्य विवाहों के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जो कम से कम दो दर्जन हैं। परंतु यह संख्या जिस छोटे आधार से एकत्रित की गयी है उस अनुपात से अत्यंत अधिक है जो इस प्रकार के विवाहों की प्रायः स्वाभाविकता स्थापित कर देती है। स्वयं ऋग्वेद के यम यमी-संवाद से इस प्रकार के विवाह की स्वाभाविकता प्रमाणित है और विशेषकर जुड़वें भाई बहनों का परस्पर विवाह तो जैसे सिद्ध प्रश्न था। इतना अवश्य है कि तत्कालीन आर्यों में इस प्रकार के विवाह की नैतिकता में संदेह किया जाने लगा था, क्योंकि यम इस प्राचीन पद्धति में अरुचि प्रदर्शित करता है और उसके अनाचार को धिक्कारता है। फिर भी उस परंपरा का सर्वथा अनस्तित्व न हो सका। आर्य-व्यवस्था को अपनाने की प्रवृत्ति रखनेवाले कृष्ण ने जिस रुक्मिन् की भगिनी रुक्मिणी से विवाह किया था उसी की कन्या से उसके पुत्र ने अपना विवाह किया। छठी शती ई० पू० में इस प्रकार के विवाह अनेक बार हुए। शाक्यों में यह साधारण पद्धति थी। गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोदन ने जिस कुल की पुत्रियों से अपना विवाह किया उसी में स्वयं गौतम ने अपना किया। आज भी दाक्षिणात्यों में 'मातुल कन्या विवाह' अनेकार्थ में प्रचलित है।

नीचे की तालिका पुराणों और वैदिक साहित्य की सामग्री से प्रस्तुत की गयी है। इसमें पितृकन्या पद का प्रयोग यह और भी स्पष्टतया सिद्ध करता है कि कन्या पिता की ही थी, चचा आदि की नहीं। इसका प्रयोग शास्त्रीय और व्यावहारिक (कानूनी) पद्धति से हुआ है। इस संबंध में एक बात यह न भूलनी चाहिए कि पौराणिक अनुवृत्त अनेकांश में प्राग्वैदिक है। उदाहरणतः त्रसदस्यु पुरुकुत्स और ययाति ऋग्वेद में भी प्राचीन माने गये हैं और उनकी उदारता की गाथाएँ ऋग्वेद में गायी गयी हैं, परंतु पौराणिक वंश तालिकाएँ उनसे कई पीढ़ियों पूर्व से आरंभ होती हैं। स्वयं मनु का स्थान उनमें पहला नहीं है, कई पीढ़ियों पश्चात् है। जिन उदाहरणों का उल्लेख नीचे किया जाता है उनमें कुछ अपवादों को छोड़कर, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, शेष सारे सगे

भाई-बहनों के विवाह से सबंध रखते हैं, और जो अपवाद है स्वय वे भी कम से कम सौतेले, या सगे चचेरे भाई-बहिनों के हैं।

(१) वेण के पिता अग ने अपनी पितृ कन्या सुनीता से विवाह किया।

(२) विप्रचित्ति ने अपने पिता कश्यप की कन्या सिंहिका को ब्याहा।

(३) अग और सुनीता के पीछे दसवीं पीढी मे यम और यमी आते हैं, क्योंकि ये विवस्वान् की सतान हैं और विवस्वान् विप्रचित्ति और सिंहिका का सौतेला भाई है।

(४) विवस्वान् के दूसरे पुत्र मनु ने श्रद्धा से विवाह किया, और श्रद्धा महाभारत मे विवस्वान की कन्या कही गयी है।

(५) नहुप ऐल ने अपनी पितृ कन्या विरजा को ब्याहा। वह विरजा ऋग्वेद और पुराणों के यशस्वी नृपति ययाति की माता हुई।

(६) अमावसु ऐल की पत्नी उसकी पितृ-कन्या अच्छोदा हुई।

(७) ययाति के श्वसुर शुक्र-उशनस् ने अपनी पितृ कन्या गा को ब्याहा।

(८) देवयानी की अग्रजा देवी ने वरुण को ब्याहा जो शुक्र उशनस् का दूसरा वशज होने के नाते देवी का सगा, सौतेला या चचेरा भाइ रहा होगा।

(९) अगिरस् कुलीय भरत ने अपनी तीनों भगिनियो को ब्याहा।

(१०) सम्रताश्व की कन्या हैमवती दृषद्वती ने अपने पिता के दोनों पुत्रों, कृशाश्व और प्रत्याश्व, से विवाह किया।

(११) मान्धातृ पुत्र पुरुकुत्स ने अपनी पितृ-कन्या नर्मदा को ब्याहा।

(१२) सगर के पौत्र अशुमत् ने अपनी पितृ कन्या यशोदा को ब्याहा।

(१३) दशरथ की रानी कौशल्या अपने पति की पितृकुलीया, सभवत चचेरी बहिन थी।

(१४) **दशरथ जातक** से ज्ञात होता है कि राम और सीता भाइ बहिन थे। क्या **'जनक-दुहिता'** का अर्थ **'पितृ कन्या'** हो सकता है?

इसी काल मे सभवत यह **'पितृ-कन्या-विवाह'** की परिपाटी बद हो गयी। राम ऋग्वैदिक व्यक्ति थे और यम यमी के सवाद से जान पड़ता है कि तभी से भ्राता भगिनी विवाह बुरा माना जाने लगा। इस युग मे भारतीय आर्य आचार के नये विधान बनाने लग गये थे। जान पडता है, ऋग्वैदिक समाज ने अब इस प्रथा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, क्योंकि राम के बाद प्राय २७ पीढियों तक पौराणिक अनुवृत्तों मे एक भी पितृ-कन्या विवाह का उदाहरण नहीं मिलता। परतु यह परपरा फिर भी मर न सकी और महाभारत काल में एक बार फिर जी उठी।

(१५) कृष्ण द्वैपायन व्यास के पुत्र शुक ने अपनी पितृ कन्या पीवरी को ब्याहा।

(१६) पाञ्चालों के राजा द्रुपद ने भी अपनी भगिनी को ब्याहा।

(१७) सत्राजित् ने अपनी दस बहिनों के साथ विवाह किया ।

(१८) सात्वत ने सात्वती को ब्याहा जो उसकी भगिनी जान पड़ती है ।

(१९) शृंजय के पुत्र ने शृंजय की दो कन्याओं के साथ ब्याह किया ।

(२०) सात्वत के प्रपितामह ने एक ऐक्ष्वाकी (अपने ही कुल की) को ब्याहा ।

(२१) इस विवाह से उत्पन्न पुत्र ने एक अन्य ऐक्ष्वाकी (कौशल्या) को ब्याहा ।

इस काल के बाद पौराणिक अनुवृत्त म फिर इस प्रकार के वर्णन नहीं आते । सभव है, कुछ अशों और क्षेत्रो में इस परपरा का सुधार हो गया हो । परतु प्रमाणत इसका उच्छेद न हो सका । बौद्ध अनुश्रुतिया में अनेक उदाहरण इस निष्कर्ष को पुष्ट करते हैं । दशरथ जातक मे आये राम सीता के सबध का हवाला ऊपर दिया जा चुका है ।

(२२) कृष्ण के जरायुज (जुड़वें) भाई ने विपितृ से उत्पन्न अपनी ही माँ की कन्या को ब्याहा ।

(२३) काशी के उदयभद्र ने अपनी सौतेली बहिन उदयभद्रा को ब्याहा ।

(२४) बुद्ध ने अपनी माता की भतीजी गोपा से ब्याह किया, यह ऊपर कहा जा चुका है ।

(२५) कोशलराज प्रसेनजित के पिता महाकोशल ने अपनी पुत्री कोशल देवी का ब्याह मगधाधिप बिबिसार से किया और उसके पुत्र प्रसेनजित् की कन्या वजिरा का ब्याह बिबिसार के पुत्र अजातशत्रु से हुआ ।

ऊपर के उदाहरणों से सिद्ध है कि भ्राता भगिनी विवाह प्राग्वैदिक काल से बुद्ध युग तक बराबर आर्य आचार की व्यवस्थित और मान्य पद्धति रही है । इसी कारण जब यमी यम को चुनौती देती हुई उसे उस प्राचीन परपरा की याद दिलाती है—**गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्दे वस्त्वष्टा सविता विश्वरूप । नकिरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि वेदनावस्य पृथिवी उतद्यौ** । (ऋ०, १०।१०।५)—तब वह सहमकर झल्ला उठता है । और जसा ऊपर कहा जा चुका है, यह परपरा अभी सर्वथा लुप्त न हो सकी, किसी न किसी रूप म दक्षिण में यह अभी तक विद्यमान है । अत यह कहना कि आर्यों और सेमिटिक जातिया मे विभेदक विशेषता सगोत्र और असगोत्र विवाह हैं, नितात असिद्ध है । इससे एक विशिष्ट बात यह सिद्ध होती है कि सामाजिक पद्धतियों और आचारों पर सस्कृतियों अथवा जातिया का विभाजन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे बराबर एक जाति से दूसरी जाति द्वारा सीखे और बर्ते जाते रहे हैं । इन उदाहरणों के महत्वपूर्ण प्रमाण से भी सस्कृतियो का अतरावलबन ही प्रमाणित होता है ।[१]

१ सुविस्तृत निर्देश के लिए देखिए मेरा ग्रथ, वीमेन इन ऋग्वेद, पृ० १७१-१७८—लेखक ।

इससे भी कहीं अधिक टिकाऊ और अकाट्य सांस्कृतिक अंतरावलम्बन का प्रमाण नीचे दिया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऋग्वेद और भारतीय सम्मिश्रण के साथ अथर्ववेद सर्वथा आर्य ग्रंथ माने जाते हैं। परन्तु १९४२ ई० में मुझे कुछ ऐसे प्रमाण मिले जिनसे यह सिद्ध हो गया कि अनेकांश में अथर्ववेद अनार्य प्रमाणित किया जा सकता है। कम से कम उसमें (और ऋग्वेद में भी) अनेक ऐसे स्थल हैं जो 'अनार्य' हैं और जिनका अर्थ अन्य आर्येतर भाषाओं तथा इतिहासों के अध्ययन से ही लगाया जा सकता है। इनमें से हम केवल कुछ महत्त्वपूर्ण मंत्रों का प्रमाणगत उदाहरण देंगे। मंत्र इस प्रकार हैं —

> असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च।
> सात्रासाहस्याहं मन्योरवज्यामिव धन्वनो विमुञ्चामि रथाँ इव ॥६॥
> आलिगी च विलिगी च पिता च माता च।
> विद्म वः सर्वतो बन्ध्वरसाः किं करिष्यथ ॥७॥
> उरुगूलाया दुहिता जाता दास्यसिक्न्या।
> प्रतङ्कं दद्रुषीणां सर्वासामरसं विषम् ॥८॥
> ताबुवं न ताबुवं न घेत्त्वमसि ताबुवम्।
> ताबुवेनारसं विषम् ॥१०॥ – अथर्व वेद, ५।१३

सर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर अभिनंदन ग्रंथ में श्री बाल गंगाधर तिलक ने अपने लेख 'कैल्डीयन एंड इंडियन वेद्ज' (कल्दी और भारतीय वेद) में पहले पहल विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। फिर मैंने श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का, जो अलाय बलाय की व्युत्पत्ति के लिए कुछ दिनों से जागरूक थे, ध्यान इस ओर आकर्षित किया और उन्हें वह सब सामग्री दी जिसका उपयोग उन्होंने अपने 'अलाय बलाय' नामक लेख में किया। यह लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका के संवत् १९९९ के कार्तिक माघ वाले अंक के पृष्ठ २९६ ३०४ पर छपा है।[1]

इन मंत्रों का अर्थ ब्लूमफील्ड के आधार पर श्री तिलक ने इस प्रकार दिया है—

"जिस प्रकार धनुष में ज्या ढीली की जाती है, अश्वों से रथ विलग किया जाता है, मैं तुम्हें काले भूरे सर्प तैमात और सर्वजिथी अपोदक विष से मुक्त करता हूँ।६।

"आलिगी और विलिगी, पिता और माता, तुम्हारे सारे बंधुओं को हम जानते हैं। विष विहीन भला तुम क्या कर सकोगे।७।

१—कुछ दिन हुए श्री रामचंद्र टंडन ने मेरा ध्यान इस लेख की ओर आकर्षित किया। मुझे उसमें अपना नाम न देख कुछ आश्चर्य हुआ। विद्वान् लेखक के स्मृति भ्रम से ही संभवतः ऐसा हुआ—लेखक।

"करैत (काले) के साथ उत्पन्न (है) यह उरुगूला की दुहिता—उन सबका विष शक्तिहीन हो गया है जो अपने आश्रय को भाग गये हैं। ८।

"ताबुव (अथवा) न ताबुव (हे सर्प) तू ताबुव नहीं है। ताबुव द्वारा तेरा विष व्यर्थ कर दिया गया है। १०।"

स्वय तिलक ने तैमात, आलिगी, विलिगी, उरुगूला, और ताबुवम् पर प्रकाश डाला है। इन सबको उन्होंने अवैदिक अक्कादी (खल्दी) शब्द माना है। तैमात, उनके विचार से तियामत है, और ताबुवम् तोश'। इनमे से आलिगी, विलिगी और उरुगूला का अर्थ तिलक भी नहा लगा सके हैं, यद्यपि यह उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि इनकी व्युत्पत्ति सस्कृत म नहीं हो सकती, ये अवैदिक हैं और इनका सबध भी सभवत खल्दी आदि भाषाओं से है। यहाँ असीरी पुरातत्व का अनुशीलन करते हुए जो सामग्री मुझे मिली है नीचे उसका उपयोग होगा जिससे यह प्रमाणित हो जायेगा कि ये शब्द असीरी हैं और इनका अर्थ अथर्ववेद का भारतीय मत्रकार स्वय नहा जानता, यद्यपि वह इनका प्रयोग करता है।

परन्तु इनकी व्युत्पत्ति अथवा अर्थ करने के पूर्व इनका वैज्ञानिक इतिहास जान लेना कुछ कम रुचिकर शायद न होगा। आलिगी, विलिगी तैमात आदि का अर्थ करते हुए 'वैदिक इ डेक्स' के प्रणेताओं—मैक्डोनेल और कीथ—ने आलिगी का अर्थ विलिगी, विलिगी का आलिगी और तैमात का दोना करके अद्भुत अन्योन्याश्रयवाद का चिन्तन किया है। ब्लूमफील्ड, ह्विटनी, ग्रिफिथ, आदि ने इन शब्दो का अर्थ तो किया है पर केवल शाब्दिक। उन्हें स्पष्ट करने का उन्होंने निश्चय कोई प्रयत्न नहा किया। प्रमाणत रहस्योद्घाटन उनकी शक्ति और तत्कालिक पुरातात्विक ज्ञान से परे था। इन शब्दों में से तैमात का प्रयोग अथर्ववेद ५। १८। ४ म फिर एक बार हुआ है, परतु आलिगी, विलिगी और उरुगूला फिर कभी प्रयुक्त नहीं हुए। इनका प्रयोग पश्चात्कालीन साहित्य—काशिका सूत्र—मे हुआ है, परतु इनके मूल का विवेचन वहाँ भी नहीं किया गया है। वहाँ का प्रसग अवश्य सर्पविष विमोचन है। मैक्डानेल और कीथ की ही भाँति ग्रिफिथ ने भी तैमात, अपोदक, आलिगी, विलिगी और उरुगूला को साँपों की अज्ञात जातियाँ कहा है। निरुक्त निघटु मे इनको निरर्थक शब्द कहा गया है। खल्दी लोगों के अनुसार तियामत जल का दैत्य है जो खल्दी सृष्टिपरक अनुश्रुतियों मे कभी पुरुष कभी नारी माना गया है। अपोदक, जो एक प्रकार का स्थल-सर्प है, तियामत के साथ साथ ही व्यवहृत हुआ है। तियामत और मारदुक का युद्ध अनेक 'कीली' (क्यूनीफार्म) अभिलेखा का विषय है। तिलक के विचार से उरुगूला का व्युत्पत्तिक अर्थ 'विशाल नगर' (उरु=नगर, गुल=*विशाल*) है और भावार्थ पाताल है। वेबर ने इस शब्द को प्राकृत रूप अथवा *सस्कृत गु* मे

बना मान जगल का अर्थ निकाला है। परन्तु प्रमाणत तिलक और वेबर दोनों गलत हैं। हम यथास्थान इनका अर्थ करेंगे।

तिलक लिखते हैं—"**आलिगी** और **विलिगी** का मूल मे स्थापित न कर सका, परन्तु सभवत ये अक्कादी शब्द हैं क्योंकि एक असीरी देवता का नाम **बिल** और **बिलगी** है। कुछ भी हो, इसमें कोई सदेह नहीं कि **तैमात** और **उरुगूला**, कुछ अतर होते हुए भी, वास्तव में अक्कादी अनुश्रुतियों के **तियामत** और **उरुगुल** अथवा **उरुगूला** हैं और वैदिकों ने अपने खल्दी पडोसियों अथवा सौदागरों से इनको लिया होगा।" (पृ० ३५)

इसी प्रकार श्री तिलक की राय मे **ताबुवम्** पोलिनेशियन शब्द तानू—अथवा—से बना है। स्पष्टत यह वही शब्द है जिससे अरबी 'तोआ' बनता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, श्री तिलक की **तैमात** और **ताबुवम** की व्याख्या सही है परन्तु **आलिगी**, **विलिगी** तथा **उरुगूला** का अर्थ वे नहा लगा सके, यद्यपि उनके अभारतीय मूल का उन्होंने सही पता लगा लिया था। यह विश्वास किया जा सकता है कि यदि वे जीवित होते तो सभवत इनका अर्थ वे वही करते जो नीचे किया गया है, क्योंकि इनका आधार भी असीरी पुरातात्विक खोजें हैं जिनका हवाला उन्होंने अपने लेख मे दिया है। ये खोजें वस्तुत उनकी मृत्यु के पश्चात् की जा सकी और व इनका उपयोग न कर सके। डाक्टर लियनार्ड वूली ने आज से प्राय पद्रह वर्ष पूर्व ही वह पट्टिका निकाल डाली थी जिन पर **आलिगी**, **विलिगी**, **एलूलू**, **बेलूलू** आदि अभिलिखित थे, परन्तु असीरी विद्वानो को इन अथर्व वेदीय मत्रो का ज्ञान न था जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है और भारतीय विद्वान् किस प्रकार असीरी खोजो के प्रति उदासीन हैं[1] यह कहने की आवश्यकता नहा।

श्री तिलक के उठाये इस प्रसग पर म प्राय सन् '३५ से विचार कर रहा था कि सन् '४० मे मुझे डा० वूली की असीरी खुदाइयों से प्राप्त सामग्री का हवाला पढने का सुअवसर मिला। इन्हें पढकर मेरी पुरानी धारणा बलवती हो उठी। सन् '३७ मे डाक्टर प्राणनाथ का एक लेख—वेद का **सुमेरीय मूल**—काशी विश्वविद्यालय की **शोध पत्रिका** म छपा था, उसे फिर पढा और फिर असीरी खोजो की ओर मुडा। धारणा सही निकली। डा० गारनेट ने बृटिश म्यूजियम के सुमेरो असीरी विभागों की गाइड-स्वरूप एक पुस्तिका छापी थी। इन्हीं दिनों उसे जो उलट रहा था तो उस पट्टिका पर नजर गयी जो प्राय ३००० ई० पू० के असीरी राजाओं की वश तालिका थी, जो ऊर नामक असीरी नगर से खोदकर प्राप्त की गयी थी और जिसमें **आलिगी** और **विलिगी**

१—डाक्टर प्राणनाथ को छोडकर।—लेखक

पिता और पुत्र के रूप में अभिलिखित मिल गये, बिना एक मात्रा के अंतर के। इसी पाट्टिका पर कुछ नीचे एलूलू बेलूलू भी राजा के रूप में अभिलिखित मिले। पीछे देखा तो कुछ अंतर के साथ यही पट्टिका कैंब्रिज प्राचीन इतिहास के भाग एक में छपी मिली। संभवत वैदिक मंत्रों का ज्ञान न तो डा० वूली को था, न डा० बार्नेट को और न कैंब्रिज प्राचीन इतिहास के उस प्रकरण के लिखनेवाले को। परंतु निस्संदेह इन शब्दों का निरूपण हो गया।

अब इन मंत्रों की स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार होगी—उनका प्रयोग ऋषि ने सर्प-दंश झाड़ने के प्रसंग में किया है। इस प्रकार के ओझा मंत्रों का कुछ विशेष अर्थ नहीं हुआ करता और अपने जिन असाधारण शब्दों का प्रयोग ओझा कर जाता है वे प्राय निरर्थक होते हैं और यदि उनका कोई अर्थ होता भी है तो संभवत वह उसे नहीं जानता, यद्यपि किसी अत्यंत प्राचीन काल में उनका प्रयोग हुआ है। उदाहरणत युक्त प्रांत के पूर्वी जिलों और बिहार में भूत भगाते समय ओझा जिन मंत्रों का प्रयोग करते हैं उनमें कुछ हैं—'अकाइनि बकाइनि पीपल पर की डाइनि।' इनमें पीपल की डाइनि तो बोधगम्य हैं, परंतु अकाइनि-बकाइनि सर्वथा नहीं। कम से कम ओझा इनका अर्थ नहीं जानता। अथर्ववेद के अनेक मंत्रों के उदाहरण से परंतु यह स्पष्टतया दर्शाया जा सकता है कि इनका भी अर्थ है और ये दो जाति के पौधों का निर्देश करते हैं। इसी प्रकार अथर्ववैदिक ओझा भी जिन आलिगी विलिगी तैमात उरुगूला आदि का प्रयोग करता है उनका वह स्वयं अर्थ तो नहीं जानता और उनका प्रयोग वह केवल अपने सुनने वालों में विस्मय का सृजन कर उनको प्रभावित करने ही के लिए करता है, परंतु उनका अर्थ है। ऊपर की पट्टिका पर अभिलिखित आलिगी, विलिगी असीरी राजाओं के नाम हैं जिन्होंने प्राय ३००० ई० पू० के लगभग सुविस्तृत प्रांतों पर राज किया था। और प्राचीनता का उद्घोष करनेवाले अथर्ववैदिक ओझा ने इन शब्दों का उपयोग झाड़ने वाले मंत्रों में इन्हें डालकर किया। यद्यपि दो हजार वर्षों के बाद प्रयोग करनेवाला अथर्ववैदिक मंत्रकार इनके अर्थ को न समझ सका, परंतु अपना अर्थ उसने निस्संदेह साध लिया।

इसी प्रकार उरुगूला का अर्थ भी कुछ कठिन नहीं। मुझसे भी पहले जब इस शब्द का अर्थ न चला तो मैं भी वेबर की भाँति इसका व्युत्पत्तिक अर्थ करने लगा था। 'एल इराक' और 'नासिर उल दीन' के वजन पर मैंने पहले उरुगूल को उरुक और उल में तोड़ा, फिर अघमर्षण के वजन पर इनसे उरुगूल बनाया। तत्पश्चात् उसे स्त्रीलिंग रूप दे उरुगूला बनाया और षष्ठी में विकृत कर उरुगूलाया दुहिता पाठ सार्थक किया। और मेरे इस द्राविड़ी प्राणायाम में अनेक अरबी लुगत और अरबी के विद्वानों की मदद थी। फिर भी स्वतंत्र रूप से मैं एक सही अटकल पर पहुँच गया था

कि उरुगूला का मतव उर अथवा उरु से अवश्य है। उर की खुदाई मे आलिगी विलिगी वाली जो पट्टिका मिली थी उससे यह पकड़ मुझे सिद्ध हो गयी थी। परतु मैं इस व्युत्पत्ति को केवल एक 'कार्याचित अनुमान' मानता था। डाक्टर प्राणनाथ से चर्चा करने पर मालूम हुआ कि 'गुल' असीरी भाषा मे सर्प विष भिषज् को कहते हैं। इस अर्थ की पुष्टि फिर नज माहन के कोष ने कर दी। अर्थ प्रस्तुत हो गया और द्राविडी प्राणायाम से मेरा छुटकारा हुआ। **उरुगूलाया दुहिता** का अर्थ हुआ—उर नगर के सर्प विष विशेषज्ञ की कन्या और इसका प्रयोग उस साँप का विष झाडनेवाले मत्र मे इसलिए किया गया कि उस विष शत्रु का नाम सुनकर सर्प अपना विष दशित व्यक्ति के व्रण से खींच ले।

इस प्रकार अनेक भिन्न जातियों के सांकेतिक शब्दो और सास्कृतिक ऑकडो का प्रयोग आर्यों ने किया है। भला किसे गुमान हो सकता है कि इस प्रकार के वेदपूत मत्रो म भी अभारतीय म्लेच्छ शब्दो का प्रयोग हुआ होगा। इसी प्रकार ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनेक अन्य अशो से भी इस सास्कृतिक अतरावलम्बन का सिद्धात उदाहृत किया जा सकता है। कुछ स्थलो के शब्दो को लें।

हित्ती और मितनी सघर्ष के बाद उनके सधि पत्र में (१४०० ई० पू०) ह्यूगो विन्क्लर ने जो इद्र वरुण मित्र-नासत्यों के नाम पढे वे ऋग्वैदिक देवता हैं इसम सदेह नहीं। इसका सकेत हम पहले कर आये हैं। अथर्ववेद १०।५ म आनेवाले **कनक्नम** और **ताउदी** शब्द भी सभवत पोलिनेशियन ही हैं। ऋग्वेद ७।१०४।२३ और अथर्ववेद, १।७।१ मे **किमीदिन** जाति के प्रेतों का हवाला है। यास्क ने जिस प्रकार ऋग्वेद के **तुर्फरी जुफरी** आदि के साथ आलिगी विलिगी को 'निरर्थक शब्द' कहा है उसी तर्क से इस **किमीदिन्** को भी **किमिदानीम** (अब क्या?—६।११६) कहकर सार्थक किया है। उनका तात्पर्य यह है कि उस जाति के प्रेत "अब क्या? इधर क्या? उधर-क्या?" कह कहकर पता लगाते रहते हैं इसलिए उन्हें **किमीदिन** कहा गया है। मेधा की यह अद्भुत जादूगरी है। यास्क को प्रमाणत यह नहीं ज्ञात था कि **किमीदिन्** खल्दी शब्द है और प्राचीन अक्कादी म **एकिम्मु** और **दिम्म** प्रेतो के अर्थ मे प्रयुक्त होते थे। उन्हीं का सयुक्त प्रयोग सभवत '**किम्म दिम्म**' है जिससे वैदिक **किमीदिन** बना है। इसी प्रकार खुदा का प्राचीन खल्दी नाम **जेहोवा**, जिसका उच्चारण 'यहे' होता था, वैदिक **यहु**, **यह्व**, **यहत्**, **यही**, **यह्वती** आदि शब्दो में ध्वनित है। निघण्टु के अनुसार यह्व का अर्थ महान् है। यह्व का 'महान' अर्थ में प्रयोग **सोम** (ऋग्वेद, ६।७५।१), **अग्नि** (वही, ३।१।१२ और १०।११०।३) तथा **इन्द्र** के लिए (वही, ८।१३।२४) हुआ है। इसी प्रकार 'प्रतापी' अर्थ में **असुर** शब्द का प्रयोग भी ऋग्वेद में वरुण और इंद्र के लिए किया गया है। असीरी और खल्दी अनुश्रुतियों में **असुर**

तियामत और मर्दुक की लड़ाई ऋग्वैदिक वृत्र इन्द्र का युद्ध है। जिस प्रकार तियामत सर्प है उसी प्रकार वृत्र भी सर्प है, उसे भी अहिबुध्न्य है। असुर, मर्दुक और इन्द्र एक ही हैं। अप्सु पुरुष है, तियामत (ऋग्वेद का तैमात) उसकी नारी है। इन्द्र को अप्सुजित, अप्सुक्षित कहा गया है। अप्सु को अप् का सप्तमी बहुवचन बनाना यास्क और सायण दोनों द्वारा भाष्य की विडम्बना है। अप्सु सीधा प्रथमा एकवचन है, खल्दी असीरी अनुश्रुतियों का उत्पात डालनेवाला दैत्य, जिस पर असुर, मर्दुक, इन्द्र सभी अपने अपने वज्र मार कर यश मोल लेते हैं। उसका प्रयोग ऋग्वेद (१।६०।६, १०।११८।६, १।१५४।१ आदि) में भी 'विष्णु' के अर्थ में हुआ है। श्री तिलक को तो **सिनीवाली** भी अभारतीय जान पड़ा है। तुर्फरीतू (ऋग्वेद, १०।१०६।६) तो निश्चय अभारतीय है—सम्भवतः खल्दी, क्योंकि इसका 'इतु' खल्दी में मास का अर्थ रखता है जिसका ऋतु रूपान्तर ऋग्वेद में भी मास और ऋतु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। बाबुली तिथि क्रम में भी भारतीय **मलमास** की भांति **'वीजवान के तमसास'** (**=मलमास**) —वेअर्ब मर्लीन—का उल्लेख है। गिल्गेमिश और इश्तर की अनुश्रुतियों के अनुसार सूर्य त्वचारोग से पीड़ित होकर वर्ष में कुछ काल तक अस्वस्थ रहता है। ऋग्वैदिक जनविश्वास से इसकी अद्भुत समता है। वहाँ (ऋ० ७।१००।६) भी विष्णु (=सूर्य) **शिपिविष्ट** अर्थात् त्वचारोग से पीड़ित कहा गया है। सप्तकोणों के संबंध में बाबुली और पौराणिक तथा वैदिक अनुश्रुतियों में अद्भुत समता है। खल्दी अनुश्रुति में **सात स्वर्ग** और **सात नरक** हैं, तियामत के **सात मस्तक** हैं। इसी प्रकार इन्द्र (ऋ० १०।४९।८) भी **सप्तहन्** है, सात तलों वाला, सिंधु के प्रच्छन्न तत्त्व जिनके द्वार इन्द्र और अग्नि खोलते हैं (ऋ० ८।४०।५)।

इसलिए कि प्रस्तुत निबंध का उद्देश्य अन्यथा न समझा जाय स्वयं तिलक सरीखे प्राचीनतावादी विद्वान् का एक उद्धरण दे देना युक्तियुक्त होगा—'मेरा उद्देश्य केवल वैदिक विद्वानों का ध्यान भारतीय और खल्दी वेदों के तुलनात्मक अध्ययन के महत्व की ओर आकर्षित करना था और यह हमने कुछ ऐसे शब्दों के निरुक्त को प्रस्तुत करके किया है जो दोनों में समानार्थक हैं, जो एकतरफा नहीं, प्रत्युत् प्रायः समकालीन आर्य और तूरानी जातियों का पारस्परिक (सांस्कृतिक) ऋण प्रमाणित करते हैं।' (**भण्डारकर-अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ४२**)।

परन्तु इसका अर्थ कभी यह नहीं है कि केवल भारतीयों ने ही अपनी समसामयिक विदेशी सभ्यताओं से सीखा है, उनको स्वयं सिखाया नहीं। जिस प्रकार उन्होंने औरों से पाया है, औरों से लेकर अपनी संस्कृति की काया का निर्माण किया है उसी प्रकार उन्होंने भी दूसरों को दिया है और उनकी देन से भी अन्य संस्कृतियाँ धनी हुई हैं। कुछ लोगों का तो मत है कि बाबुली जंतर मंतर, जादू-ओझाई, प्रलय-सृष्टि, ज्योतिष तिथिक्रम

आदि तद्विषयक भारतीय सिद्धांतों से ही अनुप्राणित हैं। सत्य चाहे जो हो, चाहे बाबुलियों ने अपने सिद्धात भारतीयों से पाये हों, अथवा भारतीयों ने अपने बाबुलिया से, एक बात सिद्ध है कि आदान-प्रदान हुए हैं और फलस्वरूप दोनों संस्कृतियों की काया बनी है। बिना एक के अस्तित्व के दूसरी नहीं बन सकती थी। बाबुली वस्त्रतालिका में **मलमल** का नाम सिंधु मिलता है जिससे उसका भारतीय ग्रहण सिद्ध है। यह शब्द अक्कादी (खल्दी) मलमल के अर्थ में केवल इस कारण प्रयुक्त हो सका कि मलमल भारत में सिंधुनद के तट पर बुनी जाती थी। **ओल्ड टेस्टामेंट** का **शदीन** शब्द भी इसी अर्थ में इसी भाव से प्रयुक्त हुआ है। **फिनीशियन मनह्** (आभूषण—मायरा) ऋग्वैदिक **मना** का रूपांतर मात्र है जो ऋग्वेद ८।७८।२ में—**सचा मना हिरण्यया**—मिलता है। इसी प्रकार भारतीय आधारों ने संसार की पिछली सभ्यताओं के धर्म, दर्शन, कथा साहित्यादि को काफी प्रभावित किया है। इसी प्रकार अंकगणित, बीजगणित, चिकित्सा आदि के क्षेत्र में भी अनेक सभ्यताएँ भारत की ऋणी हैं।

संस्कृति केवल कुछ काल तक ही एकदेशीय रह सकती है, अपने विकास क्रम के युगांत संधियों के अल्पकाल मात्र में। शीघ्र फिर वह अपने प्रवाह में चल पड़ती है। समष्टि और समन्वय उसके शारीरिक अवयव हैं। शरीर की ही भाँति उसके भी संधियाँ हैं, अनंत जहाँ अनेक संस्कृतियों का सम्मिलन हुआ है, परंतु जैसे नदियों के संगम के पूर्व की पृथक् धाराएँ संगम के बाद मिलकर एक हो जाती हैं, संस्कृति भी अनेक सामाजिक धाराओं का सम्मिश्रित प्रवाह है, अविच्छिन्न और स्वाभाविक।

/

रघुकुल तिलक

शंकरा बाबू

बाबू रमाशंकर को जेल की नौकरी करते अधिक समय नहीं बीता था। और जिस जेल में हम लोग थे वहाँ आये तो उन्हें एक ही महीना हुआ था। पर इस एक ही महीने में उनका सब लोगों से अच्छा परिचय हो गया था। इसका एक कारण तो यह था कि उनको तीनों श्रेणियों के नजरबंदों का सब काम विशेष रूप से सौंप दिया गया था। और इस सिलसिले में उनको सभी लोगों के सम्पर्क में आना पड़ता था। दूसरे यह बात भी थी कि वह स्वभाव से मिलनसार थे और पढ़े लिखे आदमियों में बैठकर अनेक विषयों पर बातचीत कर सकते थे। इसीलिए इस थोड़े से ही समय में हम लोगों ने उनके बारे में बहुत कुछ जान लिया था।

बाबू रमाशंकर अपना नाम अंग्रेजी में 'आर० शंकरा' लिखते थे और शायद इसीलिए शंकरा बाबू के नाम से मशहूर थे। उनकी उम्र २५ और ३० वर्ष के बीच में रही होगी, यद्यपि वह स्वयं अपनी उम्र का हिसाब भिन्न भिन्न व्यक्तियों को भिन्न प्रकार से बताया करते थे। इस थोड़ी सी ही उम्र में उनकी चाँद के बाल बहुत कुछ गायब हो चुके थे। बिना हैट कभी धूप में से गुजरते तो उनकी खोपड़ी पर नजर ठहरना मुश्किल हो जाता था। इतने जल्द बाल उड़ जाने का कारण वह स्वयं अत्यधिक चिंतन तथा अध्ययन बताया करते थे। इस बात का उनको अफसोस भी नहीं था, बल्कि अपने आपको (चाहे हँसी में ही सही) लेनिन, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, आदि की श्रेणी में रखकर थोड़ा बहुत गौरव ही मानते थे। उनका रंग गोरा और कद छोटा था। शरीर दुर्बल नहीं था और न स्वास्थ्य ही खराब था, पर तो भी वह हमेशा थके हुए और परेशान से मालूम होते थे। शायद उनके ऊपर काम का भार बहुत था या कम से कम उसे महसूस बहुत करते थे। अपने दिमाग की परेशानी को कम करने के लिए वह निरंतर सिगरेट पीते रहते थे। वह हमेशा तेज चलते और जल्दी जल्दी बोलते थे। उनके हँसने का ढंग अजीब था। क्या मजाल कि हँसी या मुस्कराहट क्षण भर से अधिक उनके होंठों पर टिक जाय। आखिर इसके लिए भी तो अवकाश की जरूरत थी, और इसका उनके पास सदैव अभाव रहता था। वह अपने माता पिता के इकलौते लड़के

थे और हाल ही में उनके पिता का देहान्त हो जाने के कारण गृहस्थी का सब भार उनके सिर पर आ गया था। यही कारण था कि उनकी शिक्षा भी स्वयं उनकी ऊँची कल्पना की अपेक्षा अधूरी ही रह गयी और उन्हें अपने नाम के आगे सिर्फ 'एम० ए० (प्रीवी०)' लिखकर ही संतोष करना पड़ता था। वह पी० सी० एस० की परीक्षा में भी बैठे थे और प्रांतीय सेक्रेटेरियट में भी भरती होने का प्रयत्न कर चुके थे—पर दुर्भाग्यवश दोनों कोशिशों में असफल रहे। आखिर मरता क्या न करता के अनुसार वह लड़ाई में किसी विभाग में अपना नाम दे देने की बात सोच ही रहे थे—कि उनके एक मामा की कोशिश से जो पहले से इस विभाग में हैं, उनको जेल की यह नौकरी मिल गयी। वेतन अधिक नहीं था और उनकी साहित्यिक रुचि तथा देशसेवा के पुराने मंसूबों के भी यह नौकरी अनुकूल नहीं पड़ती थी। पर क्या करते ? एक स्त्री, दो बच्चे, एक वृद्धा माता—इन सबका भार भी तो उनके सिर पर था और फिर देशसेवा तो मनुष्य हर जगह रहकर कर सकता है। जेल विभाग में तो सुधार और सेवा का हमेशा अच्छा क्षेत्र रहता है, विशेषकर इस समय जब कि इतने देशसेवक यहाँ बंद थे। यही सब सोचकर शंकर बाबू जेल के चक्कर में आ फँसे थे। पर यह स्पष्ट ही था कि वह अपने भाग्य से संतुष्ट नहीं हैं।

शंकर बाबू के बारे में इतनी बातें जानने के बाद भी उनका एक गुण मुझसे अभी तक छिपा रह गया था और वह यह कि वह कवि थे और स्वयं कविताएँ लिखते थे। उनकी कुछ कविताएँ हिंदी की मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुकी थीं। इस सबका परिचय मुझे किस प्रकार मिला, यह भी बता देना बहुत जरूरी है।

मैं पहले बता चुका हूँ कि सब नजरबंदों का काम शंकर बाबू को सुपुर्द था। इन्हीं कामों में यह भी था कि जो पुस्तकें या अन्य वस्तुएँ हम लोगों के लिए बाहर से जमा हों उनको यथास्थान पहुँचा दिया जाय। पुस्तकों पर दस्तखत तो सुपरिंटेंडेंट साहब करते थे, पर पुस्तकों को दस्तखतों के लिए पेश करना और इसके बाद जो पुस्तक जिसकी हो उसको दे देना, यह शंकर बाबू का काम था। पर वह इतने कार्यव्यस्त थे कि दस्तखत होने के बाद भी पुस्तकें हफ्तों उनके दफ्तर में पड़ी रह जाती थीं। वहाँ एक बड़ा-सा संदूक रखा हुआ था। दस्तखत होने के बाद उसी में सब पुस्तकें भर दी जाती थीं। इस कई सौ पुस्तकों के ढेर में से किसी विशेष पुस्तक को ढूँढ निकालना आसान काम नहीं था। इसीलिए शंकर बाबू को रोज याद दिलाने और सप्ताह में कम से कम एक बार सुपरिंटेंडेंट से शिकायत करने के बावजूद पुस्तकें हम लोगों को नहीं मिल पाती थीं। मुझे घर से आये हुए एक पत्र से मालूम हुआ था कि मेरे लिए कुछ पुस्तकें जमा की गयीं और इस बात को १५ दिन से अधिक हो चुके थे। मुझे मालूम था कि सुपरिंटेंडेंट के दस्तखत भी हो चुके हैं। रमाशंकर बाबू से रोज तकाजा करता था और वह रोज अगले दिन भेजने का पक्का वादा कर लेते थे। आखिर एक रोज मुझसे न रहा गया। मैंने उनसे कहा,

"बाबू रमाशंकर, आप पढे लिखे शरीफ आदमी होकर मुझसे आठ रोज से बराबर झूठा वादा कर रहे हैं। आपको जरा भी संकोच नहीं होता।"

इस पर बाबू रमाशंकर कुछ लज्जित हुए, पर कहने लगे, "शास्त्रीजी, जितना काम मुझे करना पडता है, अगर आपको करना पडे तो आप भी अपनी पढाई लिखाई और शराफत सब भूल जायें। रही झूठा वादा करने की बात सो अगर ऐसा न करूँ तो आप लोगों से पिंड कैसे छुडाऊँ। खैर, अब आप कल सवेरे स्वयं ५ मिनट के लिए मेरे दफ्तर मे चले आइये और अपनी पुस्तकें को छॅटकर निकाल लीजिये। यह आपका पर्चा है। किसी बरकदार को साथ लेकर बिना बुलाये ही चले आइयेगा।'

मैंने कहा, "बहुत अच्छा। पर धन्यवाद तभी दूँगा जब पुस्तकें मिल जायेंगी।"

अगले दिन सवेरे जैसे ही मालूम हुआ कि शंकरा बाबू अपने दफ्तर मे आ गये हैं, मैं भी अपनी बैरक के बरकदार को साथ लेकर वहाँ पहुँच गया। शंकरा बाबू ने मुझे देखते ही अपने पास रखी हुई कुर्सी से अपना हैट उठा लिया और मुझे बैठने का इशारा करते हुए बोले, "आइये शास्त्रीजी, मुझे बड़ा अफसोस है कि आपको किताबों के लिए इतने दिन इंतजार करना पडा। देखिए वह संदूक रखा हुआ है। उसी में आपकी किताबें होंगी। कृपा करके देख लीजिये।"

शंकरा बाबू के दफ्तर बरकदार ने वह संदूक खोल दिया और मैं अपनी कुर्सी उसके पास खींचकर पेट मे निकली हुई रद्दी किताबों के ढेर की तरह पडी हुई उन किताबों को एक एक करके देखने लगा। दो घंटे के अटूट परिश्रम के बाद मैंने एक के सिवा अपनी और सब किताबें ढूँढ निकालीं और कुछ और साथियों की कुछ फुटकर किताबें भी, जिनके लिए वे लोग महीनों से तकाजा कर रहे थे, निकालकर शंकरा बाबू की मेज पर रख दीं।

मेरी सात किताबें थीं। शंकरा बाबू हरएक किताब पर सुपरिंटेंडेंट के दस्तखत देखते, किताब का नाम पढते और मुझे देते जाते, " 'मानव,'—'अनामिका,'—'आभ्या,'—'यामा,'—'सांध्यगीत,'—'प्रवासी के गीत,'—'कुंकुम'। ओहो, यह तो काव्य का पूरा खज़ाना है। या कहिये, मुझे मालूम ही न था वरना 'खूब गुजर जाती जो मिल बैठते दीवाने दो।' आप तो बड़े रसिक मालूम होते हैं। आप स्वयं भी निश्चय ही कविता लिखते होंगे।"

मैं कुछ घबराया कि कहीं वास्तव में शंकरा बाबू की काव्य-चर्चा का शिकार न बनना पड़े। पर साथ ही यह जानकर कि वह काव्य प्रेमी और संभवत स्वयं कवि हैं, उनके प्रति एक अपूर्व सद्भाव मन में जाग्रत हुआ। तो भी मैंने इतना ही कहा, "जी नहीं, मैं कवि नहीं हूँ। ये पुस्तकें तो यों ही कुतूहलवश मँगा ली थीं। जरा देखना

चाहता था कि हिंदी की काव्यधारा आजकल किस ओर बह रही है। बाहर तो यह सब पढने का अवकाश मिलता नही।"

शकरा बाबू को मानों कुछ ईर्ष्या सी हुई। कहने लगे, "अरे साहब, तभी तो मैं कहता हूँ कि हमसे तो आप ही लोग अच्छे हैं। आप लोग खेलते कूदते हैं, पढते लिखते हैं और एक हम—(यहाँ शकरा बाबू ने अपने आपको एक अनुल्लेखनीय गाली दी) हैं कि मरने तक की फ़ुर्सत नही। लेकिन शास्त्रीजी, विश्वास कीजिये, कभी हम भी आदमी थे और साहित्य-क्षेत्र मे कुछ कर गुजरने के स्वप्न देखा करते थे। अब भी कभी कभी तबियत नहीं मानती और जब जनून सवार होता है तो रात को ३ ३ बजे तक बैठकर कविता लिखता रहता हूँ। देखिये एक कविता कल रात ही लिखी है। आपको जरूर सुनाऊँगा। इस समय एकात भी है।".

शकरा बाबू ने अपनी जाकट की जेब से एक छोटी सी नोटबुक निकाली और उसके पन्ने पलट ही रहे थे कि जेल के डाक्टर साहब डा० शर्मा कुछ घबराये हुए और परेशान-से उस कच्चे फर्श की छोटी सी कोठरी मे दाखिल हुए।

मेरा डाक्टर साहब से खासा परिचय था। पर अन्य सभी कैदियों के समान मेरी भी उनके बारे में कुछ अच्छी राय नहीं थी। हम लोग उनकी हस्ती को अपने जेल-जीवन की अनेक भयकर ईतियों मे से एक मानते थे। उन्होंने पहले मुझे ही सबोधन किया, "नमस्ते, शास्त्रीजी, आप खूब मिल गये। मैं तो आपसे मिलना ही चाहता था। आपकी बैरक में एक साहब हैं। क्या नाम है उनका। वह जिनकी आँखों मे तकलीफ है, जरा चिड़चिड़े स्वभाव के—"

मैने कहा, "पडित श्यामलाल।"

"हाँ हाँ, वही प० श्यामालाल," डाक्टर साहब ने कहा, "कल शाम वह अस्पताल मे गये थे अपनी आँखों म दवा डलवाने। बिलकुल शाम हो गयी थी और मै जाने ही वाला था। इस पर भी उनको देखते ही मै रुक गया। उनकी आँखों को देखा और वह जो बदमाश क्पाउन्डर है, जो वहाँ काम करने के लिए भेज दिया गया है, उससे मैंने आर्जिरोल डालने के लिए कह दिया। पर उस कमबख्त ने—अब बताइये मेरा इसमें क्या कसूर है—उस कमबख्त ने उसकी बजाय टिंक्चर आयोडीन उनकी आँखों मे डाल दिया। वह साहब तकलीफ के मारे चीख पड़े। मैने तुरत उनकी आँखों को खुद धोया और सूदिंग आयटमेंट लगा दिया। पर वह गुस्से के मारे आपे से बाहर हो रहे थे। मुझे भी बुरा भला कहने लगे। मैने सोचा इनको तकलीफ है, इस वक्त क्यों बात बढायी जाय। मैं चुप ही रहा और उनसे माफी तक माँगी। पर वह किसी तरह न माने। कहते थे कि सुपरिटेंडेंट से शिकायत करूँगा और अगर आँखें फूट गयीं तो एक लाख रुपये

का दीवानी म दावा करूँगा। मने बहुत समझाया कि घबराइये नहीं आपकी आँखें ठीक हो जायेंगी, पर उनकी एक समझ म न आयी। अब आप उनको जरा समझा दीजियेगा कि जो कुछ होना था हो गया। अब बात बढ़ाने से क्या फायदा।"

म यह सारा वृत्तान्त श्यामलालजी से पहले ही सुन चुका था। मैंने कहा, "देखिये डाक्टर साहब, इस मामले को आप जितना छोटा समझ रहे हैं उतना नहा है। श्याम लाल जी को रात भर सख्त तक्लीफ रही है। उन्हें बिलकुल नाद नहीं है। म तो इस मामले को उनकी ओर से स्वय सुपरिटेंडेंट के सामने रखनेवाला था। अब म उनसे कैसे कहूँ कि वह चुपचाप बैठे रहें। आखिर सारी जिम्मेदारी तो आपकी ही है।"

डाक्टर साहब पहले तो चुप रहे, फिर कुछ सोचकर कहने लगे, "खैर, आप जैसा उचित समझें। म तो जेल की नौकरी मे खुद परेशान हूँ। किसी बाहर की डिस्पेंसरी म होता तो प्राइवेट प्रैक्टिस का मौका भी मिलता। पर आप लोगों से मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी। हम लोग रात दिन आपके काम मे लगे रहते हैं। इस पर भी अगर जरा सी गलती हो जाय तो आप ज़रा भी खयाल नहीं करते।"

डाक्टर साहब की आकृति से प्रकट होता था कि मानो सारा कसूर हम लोगों का ही है और उनके साथ भारी अत्याचार हो रहा है। मैंने उनसे बहस करना व्यर्थ समझा और केवल यह कहकर पीछा छुड़ाया कि "अच्छा देखिये, मैं श्यामलालजी से बात करके देखूँगा।"

शंकरा बाबू ने अपनी कविता निकाल ली थी और उसे सुनाने के लिए उत्सुक थे। कहने लगे, "अरे भई डाक्टर, क्यों परेशान होते हो? इसकी तरकीब हम तुम्हें बता देंगे। इस वक्त बैठो, एक कविता सुनो। इसका शीर्षक है 'भग्न हृदय'। इसमें—"

शंकरा बाबू का वाक्य पूरा न हुआ था कि एक नम्बरदार कुछ बड़बड़ाता हुआ आया और उसने सिगरेट की डिबिया के टुकड़े पर लिखा हुआ एक पर्चा उनके हाथ म दिया।

शंकरा बाबू की त्योरियाँ चढ़ गयीं। पर्चा लेकर पढ़ने लगे। "बर्फ अभी तक नहीं आया। खाँ साहब को १०४ बुखार है। करीमुद्दीन!"

करीमुद्दीन उस कैदी का नाम था जो शंकरा बाबू के क्लर्क, अर्दली और मुसाहिब का काम करता था। वह उनकी कुर्सी के पीछे जमीन पर बैठा बीड़ी पी रहा था। आवाज सुनते ही बीड़ी बुझाकर और कान म लगाकर तुरत मेज के सामने आकर खड़ा हो गया।

"क्यों भई करीमुद्दीन, यह क्या बात है। बर्फ आये हुए इतनी देर हो गयी और तुमने अभी तक नहीं भेजा?"

"हुजूर, बर्फ़ तो अभी नहीं आया" करीमुद्दीन ने कहा।

शंकर बाबू आवेश में आकर कुर्सी से खड़े हो गये, "अबे देखता भी है या यही बातें बनाता है। देख उस बोरी में क्या रखा है ? तेरी आँखें तो नहीं फूट गयीं ?"

"हुजूर, उसमें तो " करीमुद्दीन ने विनयपूर्वक कहा।

शंकर बाबू ने उसे धक्का दिया, "अबे देख, देख जाकर पहले। इन निकम्मे नट मारों के मारे नाक में दम है।"

करीमुद्दीन ने चुपचाप जाकर बोरी खोली और उसमें से तीन चार बड़े बड़े डले कपड़ा धोनेवाले साबुन के निकालकर शंकर बाबू के सामने लाकर रख दिये—"हुजूर इसमें यह साबुन आया है।"

"साबुन आया है ?" शंकर बाबू ने फड़ककर कहा, "साबुन कैसे आया ? हमने तो बर्फ मँगाया था। यह ठेकेदार भी अजीब आदमी है। आज ही इसकी रिपोर्ट करूँगा। कहाँ है वह इडेंटवाली किताब।"

करीमुद्दीन ने इडेंट की रजिस्टर शंकर बाबू के सामने रख दिया।

"हूँ !" शंकर बाबू ने चौंककर कहा, "बर्फ का इडेंट तो यहीं मौजूद है। अबे, मैंने तुझसे कहा नहीं था कि बर्फ का इडेंट फाड़कर दे देना और तूने साबुन का इडेंट दे दिया !"

"हुजूर ने तो यह कहा था कि आखिरवाला इडेंट दे आना," करीमुद्दीन ने कहा, "मैं क्या अंग्रेजी थोड़े ही पढ़ा हूँ जो देख लेता कि उसमें साबुन लिखा है या बर्फ। जो सबसे आखिर का था वही मैं दे आया।"

"चुप रहो, जबान मत चलाओ ज्यादा," शंकर बाबू ने डाँटकर कहा, "आज तुम्हारी पेशी करायी जायगी।"

वह नम्बरदार जो पर्चा लेकर आया था एक तरफ़ खड़ा हुआ था। शंकर बाबू ने उससे कहा, "तुम जाओ। उनसे कह देना कि बर्फ तो अभी नहीं आया। आते ही भेज दिया जायगा।"

डाक्टर साहब ने कुर्सी से उठते हुए कहा, "मैं जाकर देखता हूँ। शायद अस्पताल में पड़ा हो कुछ बर्फ।"

"अरे यार, बैठो भी," शंकर बाबू ने कहा—"पहले कविता सुनते जाओ।"

शंकर बाबू ने अपनी नोट बुक फिर सँभाली। "मैं आ सकता हूँ शंकर बाबू !" बाहर से आवाज आयी। शंकर बाबू ने झुंझलाकर नोट बुक को मेज पर पटकते हुए कहा, "आइये, आइये, आप भी आइये।"

एक खद्दरधारी नवयुवक, नंगे सिर, नंगे पाँव, कुछ उत्तेजित से, अंदर दाखिल हुए। यह देवेंद्रजी थे। यह बी क्लास के सजायाफ्ता कैदियों में से थे और दूसरी बैरक

म रहते थे। मे इन्हें देखते ही खडा हो गया और हम लोग एक दूसरे से गले मिले। कमरे में और कुर्सी नहीं थी। इसलिए म खडा ही रहा। देवेंद्रजी भी नहीं बैठे और शकरा बाबू को एक पर्चा देकर उनसे कहने लगे, "यह जेलर साहब ने आपके लिए पर्चा दिया है। म तीन रोज से बराबर कागज मॅगा रहा हूँ पर आपने नहीं भेजा। अब जेलर साहब ने इस पर लिख दिया है। आप मुझे फौरन कागज दिलवा दीजिये।"

शकरा बाबू ने उस पर्चे को आद्योपात कम से कम दो बार पढा। उनके चेहरे का रग उतर-सा गया। आखिर वह बोले, "हॉ तो आप मेरी शिकायत करेंगे। अच्छा, जरूर कीजिये शिकायत। करमुद्दीन, एक तख्ता कागज दे दो इनको। देखा आपने, शास्त्रीजी, यह इनाम मिलता है हम लोगा को। खून पसीना एक करके आप लोगों की सेवा करता हूँ। इस पर भी अगर जरा सी गलती हो जाय तो शिकायत की धमकी। क्या जनाब, (देवेंद्रजी से) आपने यह नहीं सोचा कि मुझे कुछ दुश्मनी थी आपसे, जो जान-बूझ कर आप ही की क्लास का आर्डर रोके रहता? जिस वक्त यह आर्डर आया, म आप ही लोगों के काम मे परेशान था। यह कागज कहा दूसरे कागजो के नीचे दबा रह गया। उस दिन जैसे ही यह आर्डर मने देखा, आप तीनों साहबान को तुरत बी क्लास बैरक म भिजवा दिया।"

देवेंद्रजी ने उनकी बात का कुछ उत्तर न देकर मुझसे कहा, "शास्त्रीजी, शायद आपको मालूम नहीं है कि यह क्या मामला है। करीब एक महीना हो गया कि मेरी और दो और साथियों की बी क्लास का आर्डर आ गया था। पर उस पर सिर्फ चार पाँच दिन हुए अमल किया गया है। म यह नहीं कहता कि शकरा बाबू को हम लोगों से दुश्मनी थी। लेकिन आखिर ऐसा हुआ क्यों, और जब हुआ तो सुपरिंटेंडट और जेल विभाग के दूसरे अधिकारियों को इसकी सूचना होनी चाहिए ताकि और लोगों के साथ ऐसी ज्यादती न हो। आप जानते हैं कि मेरे लिए बी० और सी० क्लास में कोइ अतर नहीं है, पर इन लोगा को तो सबक मिलना ही चाहिए।"

मुझे यह बात बिलकुल मालूम नहा थी। सुनकर बडा आश्चर्य हुआ। शकरा बाबू पर कुछ दया आयी, पर इससे अधिक उनके प्रति मन म क्रोध और घृणा का भाव था। मने कहा, "शकरा बाबू, यह तो बहुत गभीर मामला है। आप इसे कैसे दबा सकते हैं? आखिर इतने दिन के राशन का हिसाब भी तो आपको दिखाना होगा?"

"अजी वह तो सब ठीक हो जायगा," शकरा बाबू ने उत्तर दिया, "आप कहें तो मैं इतने दिन का सब राशन अभी इन लोगों के पास भिजवा दूँ। लेकिन देवेंद्रजी को तो शिकायत करके ही सतोष होगा, ऐसा मालूम होता है।"

"जी हाँ, सतोष होगा, इसमें कोइ सदेह नहीं है।' देवेंद्रजी ने उत्तेजित होकर कहा, और वह कागज लेकर तुरत बाहर चले गये।

मैं भी जाने की तैयारी में अपनी किताबें उठाने लगा पर इतने में हमारी बैरक के चौधरी जगदीश्वर सिंह एक पर्चा हाथ में लिये वहाँ आ पहुँचे। चौधरी साहब बैरक के प्रधान थे और जेल अधिकारियों से हम सबकी ओर से बातचीत किया करते थे। वह प्रति दिन इस समय शंकर बाबू से मिला करते थे और जो रोज की शिकायतें या जरूरतें होती थीं उनके बारे में उनसे बातचीत कर लिया करते थे। जो बातें बाकी रह जाती थीं या जिन शिकायतों को शंकर बाबू दूर नहीं कर पाते थे वे सप्ताह में एक बार सुपरिंटेंडेंट के सामने रख दी जाती थीं। लगभग दो महीने से यही क्रम चल रहा था।

चौधरी साहब के अन्दर आते ही मैं उनके लिए कुर्सी खाली करके जाने लगा, पर उन्होंने कहा, "ठहर जाइये, शास्त्रीजी, पाँच मिनट का काम है। मैं भी चलता हूँ।"

इस पर मैं कुर्सी उनके लिए छोड़कर किताबों के उस बड़े संदूक पर बैठ गया। चौधरी साहब शिष्टाचार वश थोड़ा संकोच प्रकट करने के बाद कुर्सी पर बैठ गये।

"कहिये चौधरी साहब," शंकर बाबू ने उनसे कहा, "आज की फेहरिस्त तो बहुत लम्बी मालूम होती है।"

"यह आप ही की इनायत है," चौधरी साहब ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। "अगर आप लोग जरा ध्यान से काम करें तो हम लोगों को कुछ भी कहने को न रहे। अब जरा सुनिये। पहली शिकायत गोयल साहब की है। उनको अपनी अँगीठी रखने की इजाजत मिल गयी थी, लेकिन जब कोयले के लिए उन्होंने इंडेंट भेजा तो वह आपके साहब ने नामंजूर कर दिया। अब वह कहते हैं कि मैं खाली अँगीठी का क्या करूँ।"

शंकर बाबू के चेहरे पर हल्की सी मुस्कराहट थी, मानो वह अपने मन में कह रहे हों,—'इस बात का तो मुँहतोड़ जवाब दूँगा।' उन्होंने इंडेंट का रजिस्टर निकालते हुए कहा, "यह देखिये साहब ने खुद अपने कलम से यह इंडेंट काटा है। उनके दस्तखत मौजूद हैं। यह तो आप उन्हीं से कहियेगा।"

चौधरी साहब ने पेंसिल से अपने पर्चे पर कुछ निशान बनाया और आगे चले। "दूसरी शिकायत सेठजी की है। साहब ने उनसे अपनी चारपाई मँगाने के लिए कह दिया था, लेकिन जब चारपाई आयी तो उसकी अदवायन की रस्सी निकाल ली गयी। अब वह चारपाई कैसे इस्तेमाल हो सकती है।"

शंकर बाबू ने तुरत कहा, "आपको शायद मालूम नहीं कि लम्बी रस्सी बैरक में नहीं रखी जा सकती। इसकी मदद से कैदी भाग सकते हैं।"

चौधरी साहब ने कहा, "लेकिन जो जेल की चारपाइयाँ हैं उनमें तो अदवायन मौजूद है।"

"अच्छा!" शंकर बाबू ने आश्चर्य से कहा, "तो यह बात शायद जेलर साहब को मालूम न होगी। मैंने उन्हीं के हुक्म से वह रस्सी निकलवायी थी। मैं उनसे कहूँगा।"

चौधरी साहब एक और निशान लगाकर बोले, "और खुद मेरी मसहरी के बॉस रोक लिये गये। अब बताइये मसहरी कैसे लगायी जा सकती है?"

शंकरा बाबू ने तुरंत कहा, "बॉस तो साहब किसी तरह नहीं दिये जा सकते। इसके लिये तो खास आर्डर्स हैं। इसके बारे में भी अगर आपको कुछ कहना हो तो साहब से ही कहियेगा।"

चौधरी साहब ने एक और निशान लगाया। "चौथी बात सबसे ज्यादा जरूरी है। श्यामलालजी की आँखों में सख्त तकलीफ है। वह साहब से फौरन मिलना चाहते हैं। आप साहब से पूछकर उनको बुलवा लीजिये—परेड का तो अभी कई दिन है।"

डाक्टर साहब अभी तक एक पुस्तक के पन्ने पलट रहे थे। श्यामलालजी का जिक्र सुनते ही चौंक पड़े और बड़ी उत्सुकता से शंकरा बाबू की ओर देखने लगे।

शंकरा बाबू ने कहा, "बहुत अच्छा, मैं साहब से जरूर जिक्र कर दूँगा और अगर उन्होंने हुक्म दिया तो श्यामलालजी को बुलवा लूँगा। लेकिन चौधरी साहब, यह मामला तो अगर यहीं तक रहता तो अच्छा होता। यह डाक्टर बेचारे—यह भी अपने ही आदमी हैं।"

चौधरी साहब ने कहा, "मैं तो सभी को अपने आदमी समझता हूँ, शंकरा बाबू! लेकिन क्या इसी बात से किसी को लोगों की आँखें फोड़ देने का अधिकार मिल जाता है? मुझे अफसोस है कि मैं इस मामले में कुछ नहीं कर सकता। इस बात को बैरक के सभी लोगों ने बहुत ज्यादा महसूस किया है।"

शंकरा बाबू कुछ कहना चाहते थे पर इसी समय एक जमादार ने दरवाजे पर आकर कहा, "शंकरा बाबू, आपको साहब बुला रहे हैं।"

शंकरा बाबू तुरंत खड़े हो गये। और सब लोग भी उनके साथ कमरे से बाहर निकल आये। शंकरा बाबू और डाक्टर साहब कुछ काना फूसी करते हुए जेल के फाटक की ओर गये। मैं चौधरी साहब के साथ अपनी बैरक में वापस आ गया।

अगले दिन सवेरे से ही बैरक के अहाते में कुछ असाधारण चहल पहल सी मालूम हुई। जमादार सफैया को डाँट रहा था। बैरक के जंगले तेल पानी से साफ किये जा रहे थे। जो फिनाइल कई कई बार लिखने पर मुश्किल से मिलती थी, आज हमारी बैरक का मेहतर उसी को पाखाने साफ करने में बड़ी बेदर्दी से खर्च कर रहा था। हमारे डॉ साहब के पास, वही जिनको पहले दिन १०४ बुखार था, एक बड़ा-सा पेचवान था। वह जमादार ने उनकी इजाजत से पानी की टंकी में एक स्टूल रखवाकर उसके ऊपर रखवा दिया। आज साग-तरकारी और खाने की अन्य सामग्री अभी से आ गयी थी और अच्छी और अच्छी मात्रा में थी। दूध में भी आज पानी का उतना अंश नहीं था।

उस दिन परेड का दिन नहीं था। फिर यह सब बंदोबस्त क्यों हो रहा है? जरूर कोई बड़ा अफसर आनेवाला है, यही मनका खयाल हुआ। आखिर पूछताछ करने पर पता चला कि कलक्टर साहब आयेंगे। नये कलक्टर मि० मेहता ने हाल ही में चार्ज लिया था और वह पहली बार जेल में आनेवाले थे। शायद इसलिए आज सफाई का विशेष आयोजन था। हम सब लोग भी इन नये साहब का रंग ढंग देखने के लिए उत्सुक थे। तुरत ही यह प्रश्न उठा कि इनके प्रति क्या रवैया होना चाहिए और इनके सामने कुछ शिकायतें रखनी चाहिए या नहीं। यह एक गंभीर समस्या थी। अतः इस पर विचार करने के लिए चौ० जगदीश्वर सिंह ने बैरक के सब लोगों को इकट्ठा किया और सभा होने लगी।

सबसे पहला प्रश्न यह था कि जब कलक्टर साहब बैरक के अंदर आयें तो उनके सम्मान के लिए सब लोगों को खड़ा होना चाहिए या नहीं। इस सवाल पर पहले भी कई बार विचार हो चुका था। लेकिन आज क्योंकि एक नया व्यक्ति कलक्टर कि हैसियत से आनेवाला था, इसलिये पं० श्यामलाल के प्रस्ताव पर इस पर फिर विचार शुरू हुआ। अधिक समय नहीं था तो भी तीन-चार व्यक्तियों ने संक्षेप में अपने विचार प्रकट किये। श्यामलालजी की राय थी कि कलक्टर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि की हैसियत से आता है इसलिए उसके सम्मानार्थ किसी हालत में खड़ा न होना चाहिए। गोयल साहब ने कहा कि हमें अपने शत्रुओं के साथ भी शिष्टाचार को न छोड़ना चाहिए। कामरेड निगम की राय हुई कि इस मामले पर कोई भी सामूहिक निश्चय होना ठीक नहीं। जैसा जिसके मन में आये वैसा करे। मैं भी कुछ कहना ही चाहता था कि इतने में एक जमादार एक पर्चा हाथ में लिये बैरक में आया। पूछने पर मालूम हुआ कि पं० श्याम-लाल को मय बिस्तर के बुलाया गया है। इस खबर से ऐसी सनसनी सी फैली कि सभा की कार्यवाही जारी रखना असंभव हो गया। सब लोग हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। कलक्टर के सम्मानार्थ खड़े होने के बारे में यही रहा कि जो जिसके मन में आये, वैसा करे और शिकायतों के बारे में चौ० साहब के ऊपर छोड़ दिया गया कि जैसा उचित समझें करें। नये कलक्टर मि० मेहता के बारे में यह निश्चय नहीं था कि वह हिंदी अच्छी तरह समझते हैं या नहीं और चौधरी साहब को अंग्रेजी बोलने में संकोच होता था। इस लिए चौधरी साहब ने कुछ खास खास बातें जिनमें पं० श्यामलाल का मामला सबसे जरूरी था, मि० मेहता के सामने रखने का काम मुझे सुपुर्द कर दिया।

इस समय हरएक के सामने प्रश्न यह था कि पं० श्यामलाल को क्यों बुलाया गया है। बिस्तर समेत बुलाये जाने के दो ही अर्थ हो सकते थे—या तो किसी दूसरी जेल को तबादला या कोठरी की सजा। इस विषय पर उच्च स्वर में आलोचना हो ही रही थी कि हमारी बैरक के नंबरदार ने आकर खबर दी कि पं० श्यामलाल को कोठरियों की

ओर जाते हुए देखा गया। अब तो आलोचना का स्वर और भी ऊँचा हो गया। मालूम होता था कि बैरक का पारा एकदम कई डिग्री चढ गया। कुछ लोगों की राय हुई कि भूख हड़ताल होनी चाहिए। कुछ ने कहा कि कलक्टर के आने पर 'इ कलाब जिंदा बाद' के नारे लगाये जायँ। पर आखिर तय यही हुआ कि इस बात को कलक्टर और सुपरिटेंडेंट के सामने रखा जाय और देखा जाय कि क्या उत्तर मिलता है, इसके बाद ही कुछ निश्चय करना ठीक होगा।

आखिर कलक्टर साहब भी आ पहुँचे। मालूम हुआ कि दफ्तर से निकलने के बाद वह सबसे पहले हमारी ही बैरक की ओर आ रहे हैं। सब लोग यथास्थान जाकर बैठ गये। कलक्टर साहब का जलूस बैरक मे दाखिल हुआ। सबसे आगे स्वय मि० मेहता थे। अधेड़ उम्र, गाट वर्ण, छोटा कद, कर्जन फैशन, निकर और कमीज की सज्जित पोशाक—इस सबके साथ उनके चेहरे पर कुछ ऐसा भाव था जिसमे सरकारी पद की मजबूरियों के बावजूद सज्जनता तथा सहानुभूति प्रकट होती थी। उनके पीछे जेलर, शकरा बाबू और डाक्टर शर्मा थे और इनके पीछे कई जमादार और नम्बरदार। हम लोगों का खयाल था मि० मेहता पहली बार आ रहे हैं, इसलिए जेल के सुपरिटेंडेंट कैप्टेन दूबे भी उनके साथ होंगे। पर उनका यह समय अस्पताल म जाने का था, इसी लिए न आ सके होंगे।

"गुड् मार्निंग, जेंटलमेन"—मि० मेहता ने बैरक में घुसते ही कहा।

दर्वाजे के निकट ही दाहनी ओर लाला किशोरीलाल की सीट थी। और सब लोगो ने तय कर लिया था कि उन सबकी ओर से मैं ही मि० मेहता से बातचीत करूँगा, पर लाला किशोरीलाल का हमारे राजनैतिक सघर्ष से कोई सबध नहीं था, इसलिए वह इस नियत्रण से मुक्त थे। वह तुरत खड़े हो गये और मि० मेहता को बहुत झुककर सलाम करने के बाद कहने लगे, "हुजूर मुझे कुछ अर्ज करना है। म सारी उम्र सरकार का वफादार खादिम रहा हूँ। मेरे खानदान के किसी आदमी का काग्रेस से कोई सबध नहीं है। फिर मुझे किस जुर्म म यहाँ बद किया गया है, यही मैं जानना चाहता था। मैं तो बिलकुल बरबाद हो गया।"

"आपका नाम किशोरीलाल है?" मि० मेहता ने शुद्ध हिंदी म पर कुछ अग्रेजियत के लहजे मे पूछा।

"जी हुजूर," लाला किशोरीलाल ने उत्तर दिया। मि० मेहता ने कहा, "ओ येस, आपका मामला तो मेरे सामने पेश हो चुका है। आपके चचा रायसाहब मनोहरलाल मुझसे मिले थे। लेकिन मैं मजबूर हूँ। पुलिस की रिपोर्ट आपके बारे म बहुत खराब है।"

"हुजूर खुद जाँच कर लें।"

"मेरे पास जाँच का और कोई जरिया नहा है। अगर आप दरअसल छूटना

चाहते हैं तो अपने यहाँ के थानेदार को खुश कर लीजिये। वह अच्छी रिपोर्ट भेजेगा तो म आपको फौरन छोड़ दूँगा।"

"लेकिन हुजूर, वह तो किसी तरह नहीं मानता।"

"यह आपकी बदकिस्मती। तब आप थोड़े दिन और यहाँ आराम लीजिये। अगर यहाँ कोई तकलीफ हो तो हमको बता दीजियेगा।" यह कहकर मि० मेहता आगे बढ़ गये।

जब तक मि० मेहता मेरे स्थान तक पहुँचे, उनसे और किसी ने बातचीत नहीं की और न कोई सम्मानार्थ खड़ा ही हुआ। जैसे ही वह मेरे सामने आये मैंने खड़े होकर कहा—"मुझे सब लोगों की तरफ से आपसे कुछ अर्ज करना है।"

"कहिये," मि० मेहता ने कहा।

मने सबसे पहले प० श्यामलाल का सारा किस्सा आद्योपात उन्हें सुना दिया और अपना यह सदेह भी प्रकट कर दिया कि उन्हें शायद इसीलिए कोठरी में भेजा गया है कि वह शिकायत न कर सकें।

मि० मेहता ने डाक्टर साहब की ओर देखकर पूछा, "यह क्या मामला है, डाक्टर?"

डाक्टर ने इस प्रकार उत्तर दिया मानो एक कठस्थ वाक्य दोहरा रहे हों, "जी, यह बात बिलकुल गलत है। मने खुद उनकी आँखों में दवा डाली। भला मैं टिक्चर आयोडीन कैसे डाल सकता था?"

मि० मेहता ने जेलर की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

जेलर ने कहा—"हुजूर, मुझे इसके बारे म कुछ मालूम नहा है। लेकिन उनको जो कोठरी की सजा दी गयी है वह एक दूसरे जुर्म के सिलसिले में है।"

"किस जुर्म के?"

"म इसके बारे में हुजूर से दफ्तर म अर्ज करूँगा।"

"नहीं, कहिये, यहीं कहिये। इन लोगों को भी मालूम हो जाना चाहिये।"

"हुजूर, उसका ताल्लुक खुद हुजूर से ही है।"

"मुझसे? मुझसे क्या ताल्लुक हो सकता है? मैंने तो उनको कभी देखा भी नहीं। खैर, आप बताइये क्या बात है?"

"मुझे एक खास जरिये से मालूम हुआ था कि उनका इरादा आपके साथ गुस्ताखी करने का है।"

"साफ साफ कहिये न। आपको क्या मालूम हुआ था?"

"हुजूर.. हुजूर. आपका हुक्म है तो मुझे कहना ही पड़ता है। उन्होंने कहा था कि जब कलक्टर साहब आयेंगे तो मैं उनके मुँह पर थूकूँगा। मैंने सुपरिटेंडेंट साहब से इसकी रिपोर्ट की। उन्होंने हुक्म दिया कि उनको कोठरी में बन्द कर दिया जाय।"

मि० मेहता कुछ मुस्कराये, "मालूम होता है कि डाक्टर साहब के ऊपर जो उनको गुस्सा था वह हमारे ऊपर उतारना चाहते थे। उनका दिमाग तो कुछ गड़बड़ रहा है ?" मि० मेहता ने मेरी ओर देखा।

युद्ध नीति के अनुसार शत्रु के आक्रमण के बचाव का सबसे अच्छा उपाय यही माना जाता है कि पहले स्वय आक्रमण कर दिया जाय। मैंने समझ लिया कि जेल अधिकारियों ने इसी नीति के अनुसार कार्य किया है। मैंने कहा, "यह बात बिलकुल गलत और गढी हुई है। प० श्यामलाल ने कभी ऐसा नहीं कहा। आप मालूम करें कि इन लोगों के पास इसका सबूत क्या है ?"

मि० मेहता ने जेलर से पूछा, "आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"जी, मुझसे मुझसे बाबू रमाशकर ने रिपोर्ट की।"

बाबू रमाशकर ने ! सबकी दृष्टि उनकी ओर उठ गयी।

"आपसे किसने कहा ?" मि० मेहता ने शकरा बाबू से पूछा।

"हुजूर, मुझे इसी बैरक के एक खास आदमी से मालूम हुआ था। उनका नाम यहाँ जाहिर करना मुनासिब नहीं है, वरना फिर कोई बात मालूम न हो सकेगी।"

"अच्छा", मेहता ने कहा। इसके बाद वह मेरी ओर देखकर कहने लगे, "मैं इसके बारे में मालूम करूँगा और सुपरिटेंडेंट से भी कहूँगा कि खास तौर पर जाँच करें। अब बहुत देर हो गयी है और मुझे सारे जेल का राउड करना है। और जो शिकायतें हों उन्हें आप लिखकर मेरे पास भेज दें।"

यह कहकर मि० मेहता एकदम लौट पडे और कुछ गभीर आकृति तथा तेज चाल के साथ बैठक से बाहर निकल गये।

अगले दिन रविवार था। सोमवार की दोपहर को १ बजे के करीब चौधरी जगदीश्वर सिंह को और मुझे सुपरिटेंडेंट के दफ्तर में बुलाया गया। हम लोगों ने जाकर देखा कि सुपरिटेंडेंट के कमरे में खासी भीड़ लगी हुई है। मेज की उस ओर अपनी कुर्सी के आगे कैप्टेन दुबे खड़े हैं और इस ओर देवेंद्रजी, प० श्यामलाल, डाक्टर शर्मा, शकरा बाबू और न्यादर नबरदार है। सुपरिटेंडेंट की कुर्सी के पीछे जेलर है। ये सब लोग भी खड़े हैं।

हम लोग भी देवेंद्रजी और प० श्यामलाल के पास जाकर खड़े हो गये। देवेंद्रजी के मामले पर विचार हो रहा था।

सुपरिटेंडेंट ने मुझसे कहा, "मि० देवेंद्र शर्मा ने मुझे अभी बताया है कि उन्होंने आपके सामने मि० रमाशकर से शिकायत के लिए कागज माँगा था और इस सिलसिले में कुछ और भी बातें आपके सामने हुई थीं। मैं यही जानना चाहता हूँ कि आपके सामने क्या बातें हुई थीं ?"

मैंने शंकरा बाबू की ओर देखा। वह भी मेरी ओर देख रहे थे, मानों कह रहे हों, 'हम दोनों साहित्यिक हैं, इस बात का ध्यान रखियेगा।" तो भी मैंने वे सब बातें जो उनके और देवेंद्रजी के बीच मेरी उपस्थिति में हुई थी, अक्षरशः सुपरिंटेंडेंट के सामने बयान कर दीं और इतना अपनी ओर से और कहा कि "हम सभी लोगों की राय में यह मामला बहुत संगीन है। अगर आप स्वयं इसमें यथोचित कार्यवाही नहीं कर सकते तो मुझे उम्मीद है कि आप देवेंद्रजी और इनके साथियों को किसी वकील से मशवरा करने का मौका देंगे ताकि अगर अन्य कोई अदालती कार्यवाही हो सकती हो तो की जा सके। साथ ही पं० श्यामलाल का मामला भी ऐसा है कि उस पर गंभीर विचार की जरूरत है। शायद मि० मेहता ने आपसे उसका जिक्र किया होगा।'

कैप्टेन दुबे ने कहा, "हाँ, मि० मेहता ने मुझसे जिक्र किया था और मैंने इस मामले में भी कुछ पूछताछ की है। पं० श्यामलाल की यह शिकायत है कि ज्यादर नंबरदार ने उनकी आँखों में टिंक्चर आयोडीन डाल दिया और इसके बाद उन पर झूठा इल्जाम लगाकर उनको कोठरी की सजा दे दी गयी। ज्यादर नंबरदार का बयान है कि उसने उनकी आँखों में कोई दवा नहीं डाली, खुद डा० शर्मा ने ही दवा डाली थी। डा० शर्मा कहते हैं कि उन्होंने टिंक्चर आयोडीन नहीं, बल्कि सही दवा डाली थी। हो सकता है कि पं० श्यामलाल को दवा कुछ तेज मालूम हुई हो और उन्होंने इसी से समझा हो कि टिंक्चर आयोडीन डाला गया है। इस वक्त उनकी आँखों को देखकर यह अंदाजा करना बहुत मुश्किल है कि ४ रोज पहले टिंक्चर आयोडीन डाला गया था या नहीं।"

चौधरी जगदीश्वर मिह की त्योरियाँ चढ़ने लगी थीं। इससे पहले कि मैं कुछ कहूँ, यह बोल पड़े,—"सुपरिंटेंडेंट साहब, आपको जेल के प्रबंध का काफी अनुभव है। क्या आप यह बात नहीं जानते कि जेल का कोई कैदी और खास कर कोई नंबरदार जेल के किसी अफसर के खिलाफ किसी राजनैतिक बंदी के पक्ष में गवाही नहीं दे सकता? लेकिन मैं आपके सामने हल्फिया बयान करता हूँ कि डा० शर्मा और मि० शंकरा दोनों ने मेरे सामने पं० श्यामलाल की शिकायत को सही माना और मुझसे और शास्त्रीजी से इस मामले को दबा देने के लिए प्रार्थना की।"

मैंने इस बयान का समर्थन किया। कैप्टेन दुबे ने कहा, "मैं आप दोनों के बयानों को ध्यान में रखकर इस मामले को तय करूँगा। अब दूसरी बात यह है कि पं० श्यामलाल ने मि० मेहता का अपमान करने का इरादा जाहिर किया। मि० रमाशंकर कहते हैं कि उन्हें आप ही की बैरक के एक सम्मानित व्यक्ति द्वारा यह बात मालूम हुई।"

मैंने कहा, "यह बात बिलकुल गलत है। अगर इसमें जरा भी सचाई होती तो हम लोगों को जरूर मालूम होता। लेकिन जब कि हम ही लोगों में से किसी व्यक्ति के

हवाले से यह बात कही जा रही है तो उचित यह होगा कि आप उस सम्मानित व्यक्ति को भी यहाँ बुलायें।"

कैप्टेन दुबे ने कहा, "यह सूचना खुफिया तौर पर दी गयी थी और साधारणत इस व्यक्ति का नाम जाहिर करना मुनासिब न होता। लेकिन अब यह मामला जहाँ तक पहुँच गया है उसको देखते हुए उनको बुला लेना ही ठीक होगा। जेलर साहब, मि० लक्ष्मीशरण को बुलवा लीजिए।" जेलर ने कहा, "हुजूर उनका तो यहाँ से ६ तारीख को ट्रांसफर हो गया।"

"हैं, ट्रांसफर हो गया? ६ तारीख को? लेकिन मि० शकरा का तो बयान यह है—" कैप्टेन दुबे ने अपने सामने रखे हुए कागजों को उलट पलटकर देखा—"कि मि० लक्ष्मीशरण ने ७ तारीख को यह सूचना दी। क्या मि० रमाशकर, आपने ७ तारीख ही कहा था न?"

शकरा बाबू ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपने पैरों की ओर देख रहे थे।

कैप्टेन दुबे ने हम लोगों की ओर देखकर कहा, "अच्छा, अब आप लोग जायँ। मैंने सब मामला अच्छी तरह समझ लिया।"

हम लोग बाहर निकल आये।

एक सप्ताह बीत गया। लगभग १ बजा होगा। मैं दोपहर का खाना खाकर जरा लेटा ही था कि जमादार ने दफ्तर से एक पर्चा लाकर मुझे दिया। मुझे मय मेरे सब सामान के तुरत बुलाया गया था। पूछने पर मालूम हुआ किसी दूसरी जेल को तबादला है, पुलीस गार्ड फाटक पर मौजूद है।

बदी जीवन में एक जेल से दूसरी जेल को रवानगी, विशेषकर जब इसका कुछ भी पूर्वाभास न हो तो बड़ी क्लेशमयी घटना बन जाती है। इतने समय तक इतने साथियों के साथ सुख दुःखपूर्ण घनिष्ठ सहवास के बाद एकदम अनिश्चित स्थान को अनिश्चित काल के लिए जाने की तैयारी ऐसी लगती मानों यमराज का विकराल दूत घसीटकर लिये जाता हो। इस बीच में कुछ साथियों से विशेषकर ऐसा गहरा हार्दिक सबंध जुड़ गया था कि उनसे इस प्रकार बिछुड़ने के विचार मात्र से सारे शरीर में सन्नाटा सा छा गया। साथ ही मन में अनेक और प्रश्न उठ रहे थे—कहाँ जाना है, कैसे आदमियों का साथ होगा, क्या-क्या नयी मुसीबतें उठानी होंगी? विषाद की एक गहरी छाया ने चारों ओर से घेर लिया था। पर चारा ही क्या था? मैंने इस प्रकार के सब विचारों को बलपूर्वक दबाने का प्रयत्न किया और अपने चेहरे पर कृत्रिम अनासक्ति का भाव लाकर तुरत खड़ा हो गया।

मेरे जाने की खबर बिजली की तरह सारी बैरक में दौड़ गयी। क्षण भर में सब लोगों ने मुझे आकर घेर लिया। मुझे इस प्रकार अकस्मात् क्यों भेजा जा रहा है, इसी

पर सब लोग अपना अपना अनुमान प्रकट करने लगे। बहुमत इसी पक्ष में था कि मैंने जो शकरा बाबू की शिकायत की थी उसी के दंडस्वरूप और उससे जो कांड उपस्थित हो गया था उसको दबाने के लिए मुझे भेजा जा रहा है और अब जेल अधिकारियों की ओर से किसी संतोषजनक कार्यवाही की आशा करना व्यर्थ होगा। मुझे भी यही बात युक्तिसंगत लगी। कुछ लोगों ने आग्रह किया कि मैं यह सारा वृत्तांत समाचार-पत्रों में देने की कोशिश करूँ। कुछ ने अपने निजी आदेश दिये और अपने अपने घरों को पत्र लिखने के लिए कहा। पर यह सब मैं मुश्किल से ही सुन और समझ पा रहा था। मेरा ध्यान उधर नहीं था। यह कहना कठिन है कि मेरा ध्यान कहाँ था। क्योंकि मुझे अपना सामान ठीक करना भी दूभर हो रहा था। अतः यह अच्छा ही हुआ कि यह सब काम कुछ साथियों ने मिलकर जल्दी से कर डाला और मुझे सब मित्रों से अलग अलग विदा होने और बातचीत करने का समय मिल गया।

इस बीच में दो बार तकाजा आ चुका था। आखिर मैं भारी भीड़ के साथ हाते के दर्वाजे की ओर चल पड़ा। दर्वाजे पर पहुँचकर एक बार फिर सबसे विदा हुआ। कुछ मित्रों की आँखें गीली हो रही थीं। उनकी ओर देखकर मुझे भी अपने आपको सँभालना मुश्किल हो गया था। अतः मैं दर्वाजे पर अधिक नहीं ठहरा और बिना पीछे देखे तेजी के साथ जेल के फाटक की ओर बढ़ दिया।

दफ्तर में पहुँचने पर मेरा सामान देखा गया कि उसमें कोई निषिद्ध वस्तु तो नहीं है। मैंने अपना हिसाब समझा, कई कागजों पर हस्ताक्षर किये और जेलर साहब से कुछ साधारण बातचीत हुई। ये सब काम मैं कुछ ऐसे यन्त्रवत् करता गया कि कहाँ क्या हो रहा है, इसका मुझे पूरा ज्ञान ही नहीं था। आखिर पुलीस के दो रक्षकों के साथ स्टेशन पहुँच गया। गाड़ी आने में कुछ देर थी। कोई परिचित व्यक्ति भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। मैंने उस तारीख का हिंदुस्तान टाइम्स खरीदा और एक बेंच पर बैठकर पढ़ने लगा।

लगभग एक घंटे बाद गाड़ी आयी। एक इंटर क्लास के डिब्बे में मेरा सामान रखा गया। मैं अभी बाहर ही खड़ा था और उस सुपरिचित स्टेशन की ओर देखते हुए मन ही मन सोच रहा था कि देखिए, फिर कब इसके दर्शन होते हैं। इतने ही में शकरा बाबू दो स्त्रियों और दो बच्चों के साथ पुल से उतरते हुए नजर आये।

मेरे पास पहुँचते ही उन्होंने बड़े तपाक से कहा, "शास्त्रीजी, नमस्ते। मैं अभी आता हूँ।" यह कहकर वह जनाने डिब्बे की ओर बढ़ गये और उसमें स्त्रियों और बच्चों को बिठाकर और अपना सब सामान रखकर दौड़ते हुए मेरे डिब्बे की ओर आये। गार्ड की सीटी बज चुकी थी। मैं डिब्बे में बैठ गया था और खिड़की से बाहर झाँक रहा था। मैंने उन्हें देखकर दर्वाजा खोल दिया।

शंकर बाबू हाँफते हुए अंदर घुसे और मुस्कराकर कहने लगे, "मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, शास्त्रीजी! अगर आपने उस दिन मेरी शिकायत न की होती तो इस नारकीय जीवन से मुझे छुटकारा न मिलता। मैं मुअत्तल तो उसी दिन हो गया और आज बर्खास्तगी का हुक्म भी आ गया। बड़े सौभाग्य की बात है कि आज आपका साथ भी हो गया। आपको बहुत बहुत धन्यवाद।"

यह बड़ा विचित्र धन्यवाद था। मैंने जीवन में पहली बार धन्यवाद पाकर संकोच का अनुभव किया। मुझे उनसे हाथ मिलाते हुए यही कहते बन पड़ा, "आइये, पहले बैठिये तो। यदि आप यह बात व्यंग में नहीं कह रहे हैं तो मैं भी आपको बधाई देता हूँ।"

"व्यंग!" शंकर बाबू ने बैठते हुए उत्तर दिया "यह भी आपने क्या बात कही! मैं सच कहता हूँ कि मैं आपका अहसान कभी नहीं भूल सकता। और हाँ, अब तो वह कविता भी आपको अवश्य सुनाऊँगा।'

मैंने पूछा, "भग्न हृदय?"

शंकर बाबू ने कहा, "हाँ।" और अपनी वही छोटी-सी नोटबुक जेब से निकाल ली।

इसी समय एंजिन ने सीटी दी और गाड़ी चल पड़ी।

मैथिलीशरण गुप्त

योजन-गंधा

पूज्य ययाति पिता के वर से हुई पुत्र पुरु की कुल-वृद्धि
और आप यदु ने भी पायी आभिजात्य के साथ समृद्धि।
उपजे भरत भूप पुरुकुल में बना उन्हीं से भारतवर्ष
पर अवतरित आप श्री हरि को पाया यदुकुल ने उत्कर्ष।
परे कृष्ण से और कौन है जिसको कोई जाति जने?
पुरुकुल में कुरु जनमे जिनसे पौरव कौरव वीर बने।
महाराज शान्तनु से कुरुकुल हुआ और मानी दानी,
देवव्रत-सा कुलधन जिनका गंगा सी जिनकी रानी।
सब राजों ने मिल शान्तनु को चुना राज राजेश्वर रूप
हुए चक्रवर्ती समुद्र तक वे अशेष भारत के भूप।
जन कर देवव्रत से सुत को धन्य हुई गंगा भी आप
हरती है जो शरणागत के सारे पाप शाप-सन्ताप।
उसके आत्ममग्न होने पर होकर शान्तनु आर्त्त-अधीर
उदासीन हो घूमा करते एकाकी यमुना के तीर।
गंगा-तीर-समान भाग्य से यमुना तट भी उन्हें फला—
लेकर दिव्य सुगंधि एक दिन शीतल मंद समीर चला,
चौंक पड़े वे उसे सूँघकर हुई ऊँघ सी उनकी दूर
फिर भी स्वप्नाविष्ट सदृश वे बढ़े मोद के मद में चूर।
खिलती हुई कली-सी आगे दीख पड़ी योजनगंधा—
हुआ निमेष मात्र में उनका मोहित मनोमधुप अंधा।
धीवर सुता मत्स्यगंधा थी योजनगंधा ऋषि-वर से,
रमणी मणि तो सदा ग्राह्य है ऐसे वैसे भी घर से।
लायी थी धारा-विरुद्ध वह खेकर छोटी सी 'तरणी
थी श्रम से उद्दीप्त और भी तप्त स्वर्ण शोभा भरणी,

उठते अग साँस बढने से हिलकोरे-से लेते थे
स्वेद बिंदु माथे के मोती भाग्य सूचना देते थे,
लघा बाँस लिये थी कर मे निज विजय ध्वज दृढ यथा
चली चलाने को प्रभाव से मानों कोई नयी प्रथा!
जल पट पर अरुणातप रेखा उसका चित्रण करती थी,
वह श्रम निष्फल देखकर बाला मुसकाती मन हरती थी।
अलकें वा यमुना लहरों से सुँघ रही थी सिर उसका,
भोले मुख पर खेल रहा था नाल भार अस्थिर उसका,
रह रह फकोरा किंतु फँसेला पड़ा-पड़ा उड़ चलता था
गोरे बाहु-मूल म यौवन फूल फूलकर फलता था।
"शुभे, कौन तुम? पली प्यार से सुख से खायी खेली हो,
अद्भुत सुरभि भरा फूली सी कल्पवृक्ष की वेली हो,
भोली भाली कुछ अल्हड़-सी निर्मल नयी नवेली हो,
क्रीड़ा-तरी लिये निर्जन म डरती नहीं अकेली हो।"
"जय हो श्रीमन्, सत्यवती मैं, दास राज हैं मेरे तात,
राज्य हमारे राजा का है, कहिए फिर डर की क्या बात?"
"क्या सचमुच तुम्हारा राजा ऐसा धीर धुरधर है?"
"अधिक क्या कहूँ, भू पर वह है ऊपर सुना पुरदर है।"
"पर कहते हैं, वह रानी के बिना रह गया है आधा।"
"मिले कहाँ गगा-सी रानी, यह तो है विधि की बाधा।"
"चाहे तो कर सकती है अब यमुना ही गगा की पूर्त्ति
सुतनु, दीख पड़ती है तुममें मुझे उसी की मजुल मूर्त्ति।
लज्जा ललनाओं की भूषा ऊषा की ज्यों अरुणाई,
समधिक साहस भरी किंतु है निडर तुम्हारी तरुणाई,
ठीक कह रहा हूँ मैं तुमसे, मुझे राजजन ही जानो—
चाहो तो तुम सुमुखि, आपको अभी महारानी मानो।
देख रहा हूँ अहा! रूप रस शब्द सुन रहा हूँ मैं आप,
दिव्य गध का क्या कहना है, फैल रहा ज्यों कीर्ति-कलाप,
सोधा न हो, पवन के द्वारा मृदु स्पर्श भी जान लिया—
क्या बतायेंगे हम, विधि ने ही तुमको देवी बना दिया।
बोलो, इस मुख से ही बोलो, अधिक नहीं बस हाँ भर दो—
विरह विरस अपने राजा को फिर से हरा भरा कर दो।"

"चिर मगल हो माननीय का दासी है पितुराज्ञाधीन।
चिटिया रानी कहलाकर ही क्या कृतकृत्य नहीं यह दीन।"
"लो मिल जाय चरित परिचय भी, सब प्रकार है यह शुभ कार्य—
कुल से नहीं, शील से ही तो होता है कोई जन आर्य।"
"यह औदार्य आर्य का, पर मैं मत्स्योदरी दासकन्या
नया जन्म सा दिया पराशर मुनि ने मुझे किया धन्या।"
"अस्तु रात होने को है अब चलो तुम्हें पहुँचा आऊँ—
असमय ठोर-कुठौर अकेली छोड स्वय कैसे जाऊँ?"
"अनुगृहीत मैं, करें न मेरे लिए कष्ट चिंता श्रीमान,
जल तो मेरे लिए गृहस्थल और वनानी विपणि समान।"—

पर दिन दास राज से मिलकर मंत्री ने उद्देश्य कहा
भाल सकुचित कर कुछ क्षण तक वृद्ध सोचता मौन रहा।
फिर बोला—"अपराध क्षमा हो, किसे न हो सतति का ध्यान,
सत्यवती रानी होगी, पर क्या होगी उसकी सतान?"
भौंह चढाकर कहा सचिव ने, "दास न होगी वह तुझ-सी।"
"प्राप्त परतु उसे होगी क्या घर की प्रभुता भी मुझ सी।"
"देवव्रत जैसे कुमार को करें राज्य-वचित हम लोग?"
"नही नहीं, वे धर्म धुरधर भोगें सदा राज-सुख भोग,
मेरा नाती भी स्वराज्य से वचित न हो, यही विनती,
होगा क्या नगण्य वह भी यदि नहीं कहीं मेरी गिनती?
देवी होने योग्य नहीं किम नृप की सत्यवती मेरी?
यों समर्थ है आप, बना लें बल पूर्वक उसको चेरी।"
"बल दिखलाते होते हम तो तू यह बात नहीं कहता,
अहो भाग्य निज मान हमारे इ गित का अनुगत रहता,
प्रजा न होकर राजा होता फिर भी तू नाहीं करता
तो मैं भी याचना न करके बल से ही वह मणि हरता।
छोड़ स्वार्थवश देवव्रत सा प्रस्तुत निज दुर्लभ युवराज,
धिक है तुझे, देखता है तू घाट दूर भावी की आज,
चुप दुःशील! दुष्ट निज जन भी दडनीय मेरे मत में
फिर भी पहले उनकी आज्ञा ले लूँ जिनका अनुगत मैं।"

कुपित अमात्य गया, धीवर चुप सिर खुजलाता खड़ा रहा
इधर-उधर देखा फिर उसने और आप ही आप कहा—
"भूप भोगिनी भिक्षुक की भी भार्या को पा सकी कहीं ?
स्वार्थ-हानि में ही परार्थ है, सब परार्थ परमार्थ नहीं !"
सुनकर मन्त्री से सब बातें शांतनु ने ली लम्बी साँस,
फिर कराहते-से बोले वे, गड़ी हृदय में जैसे गाँस,
"राजनीति की बात नहीं यह है सीधी सामाजिक बात,
मेरा जो हो, पाय न मेरी प्रजा हाय बाधा व्याघात।
धीवर को अधिकार, करे वह किसी पात्र को कन्यादान।
राज्य करे देवव्रत मेरा, मरूँ भले मैं अगनि-समान,
बार बार जनती है कोई जननी क्या ऐसी सन्तान
करती जाय जगत में जनता युग युग जिसके गुण का गान।"

सहने लगे छिपाकर अपना मनस्ताप शांतनु चुपचाप,
किन्तु खोजनेवालों से क्या छिपा रहा ईश्वर भी आप ?
ज्ञात हो गयी देवव्रत को उनकी विषम विरह-बाधा
जिसने दो दिन में ही सुनकर कर डाला उनको आधा।
संग लिये कुछ प्रमुख जनों को धीवर के घर गये कुमार,
भय से सूख और भी मानों कड़ा पड़ गया वह इस बार।
"डरो न दास-राज, तुम मेरे नाना, आज गुरुजन बन जाव,
मेरी भी पितृ भक्ति प्रमाणित देख तुम्हारा वत्सल भाव।
भाई-सा भाइ पाने को किसे न होगा कब क्या त्याग ?
मैं अपने भावी भ्राता के लिए छोड़ता हूँ निज राज्य।"
सहम गया धीवर लज्जित सा धीरे धीरे वह बोला
"अहा ! कह गया किस लघुता से महत्वचन भीष्म भोला।
किंतु—"न बोल सका वह आगे सिर नीचा कर खड़ा रहा
"कहो-कहो, सकोच छोड़कर यों चुप क्यों हो गये अहा !"
"श्रीमन्, क्योंकर कहूँ बात वह सत्य किंतु अप्रिय अनुदार
प्रकट करेंगे क्या न आपके आत्मज भी अपना अधिकार ?"
"करना तो न चाहिए, फिर भी कौन कहे आगे की बात ?
मैं इसका भी यत्न करूँगा, कुछ चिंता न करो तुम तात !

परिजन शांत रहें; साक्षी हों देश-काल जल-वायु समर्थ
निज राज्याधिकार तजता हूँ मैं भावी भ्राता के अर्थ।
बाधक बने न आगे जिसमें कोई औरस अविचारी,
मैं विवाह भी नहीं करूँगा, बना रहूँगा व्रतधारी।"

भीष्म-भीष्म कह उठे देव-नर, वे शोभित ही हुए विशेष,
देता आता है श्रद्धांजलि उन्हें आज भी उनका देश।
शांति गयी, शांतनु की यद्यपि योजनगंधा घर आयी
वे रो पड़े—"पुत्र बलि देकर मैंने नवपत्नी पायी।
प्रजा पालता रहा प्यार से रहकर यदि मैं राज्यासीन
तो हो स्वयं काल भी मेरे देवव्रत का इच्छाधीन।"

चंद्रकुँवर बर्त्वाल

यम

१

सुनता हूँ गूँज रही महिष-कंठ किंकिणी
मेरे उर देश में
हे यम, जम गयी दृष्टि आँखों में देखकर
तुमको इस वेष में !
हाथों में कठिन पाश, आँखों में आग सी
अलकों में तम भरा
वाहन वह काल महिष जिसकी पद-चाप से
हिलती व्याकुल धरा !
मेरी हो रही लुप्त अंगों में चेतना
मूर्च्छा सी छा रही
मेरी ही ओर शनै छाया यह आ रही !

२

मुझको तज छिपी आज पृथ्वी तम गर्भ में
उठ ओ नादान मन
आँखों में अश्रु, पोंछ एकाकी विश्व में
अब तू दृढ प्राण बन
डर मत ओ दीन हरिण, नखरों में व्याघ्र के
अपना सिर डाल दे
बचने की राह नहीं होने दे सत्य अब
अक्षर कटु भाल के !
आये हैं मृत्यु देव द्वारों पर, शंख में
स्वागत के स्वर भरो
महा-अतिथि चरणों का सिर दे पूजन करो !

३

चुनने को एक म्लान मिट्टी के फूल को
आये प्रभु आप ही
करने को नष्ट एक तृण को लाये शिखा
ज्वलित वज्र ताप की
पीने को एक क्षुद्र जीवन के स्रोत को
महार्णव स्वय चले
और राह जिस उर ने देखी नित आपकी
नील नभ के तले—
उसे विजित करने को, आये हैं आप ले
सख्यातिग वाहिनी
गाता में आर्द्र कठ स्वागत की रागिनी

४

जीवन के अर्थहीन स्वप्नो की रात के
उज्ज्वल तन प्रात हे
द्विधा द्वद्व सुख दुख की लहरो पर डोलते
निर्मल जलजात हे
सत्यों के परम सत्य, मोनों के मोन हे
सागर चिर-शाति के
हे सुरम्य अस्ताचल पृथ्वी पर चल रहे
भाग्यों की काति के !
मूलों पर निखर फूल वृतों से छूटकर
फल तुमको जानते
आनत हो स्वर्ण शस्य तुमको पहचानते।

५

विवस्वान के सुपुत्र बधु यमी बहन के
पितरों के प्रथम हे
मर करके प्रथित किया तुमने इस विश्व म
मरने का नियम हे !
खोले तुमने कपाट उस अपूर्ण शाति के
क्लात विश्व के लिए

पाते जिसमें प्रवेश भले-बुरे सभी जो
जग ने पीड़ित किये।
उज्ज्वल ऋषि, दिग्विजयी शोभन सम्राट गण
इसी राह सब गये
इसी राह जीवित सब जगती के चल रहे।

६

सोचूँ मैं क्यों?—कि बुरा होगा वह देश तुम
करते शासन जहाँ।
सोचूँ मैं क्यों?—कि तिमिर होगा उस लोक में
तुम हो पावन जहाँ।
नभ में घिरते न मेघ, पलकों पर नींद की
छाया पड़ती नहीं
अमर लोक वहाँ सब होते हैं अपाप, आयु
घटती बढ़ती नहीं।
नर है अतिशय विमूढ़ दुखमय संसार से
करता है मोह जो
पीता विष नित्य, अमृत से करता द्रोह जो।

७

तुमसे भय हुआ मृत्यु मुझको, इसके लिए
मुझको तुम दो क्षमा
आता हूँ साथ तुम्हारे मैं संसार से
चिता भस्म को रमा
जीवन की चाह नहीं मुझको अब मृत्यु से
मरने का भय नहीं
करती है मृत्यु सदा जीवन को पूर्ण ही
इसमें संशय नहीं।
वर्षा से म्लान-वर्ण पृथ्वी को छोड़ मैं
जाता उस लोक में
शास्ता यम, जहाँ नहीं कोई भी शोक में।

सत्येंद्र शरत्

तार के खंभे

['समाज सेवक संघ' के ऑफिस का एक कमरा। कमरे में एक दूसरे के ठीक सामने दो दर्वाजे हैं। अन्य दीवारों की अपेक्षा कमरे की पिछली दीवार भली भाँति दिखायी देती है, जिस पर हल्के रगों से एक चित्र अंकित है। चित्र में नीला आकाश सफेद बादलों और कुछ उड़ते हुए पक्षियों के साथ दर्शाया गया है। नीचे में एक तार का खंभा तारों से बिंधा हुआ, तिरछे रूप में खड़ा है। ऐसा प्रतीत होता है कि दीवार का यह चित्र पहले किसी ने रेल में सफर करते हुए तिरछे 'एंगिल' से कैमरे द्वारा खींचा है और फिर सफलतापूर्वक उसे दीवार पर उतार दिया है। दीवार पर घड़ी बारह बजा रही है।

कमरे में उतना ही सामान है जितना कि इस प्रकार के ऑफिसों में होता है। बायें दर्वाजे के पास तीन टीन की कुर्सियाँ और एक मेज है, मेज—जो फाइलों और रजिस्टरों के बोझ से तो नहीं, किंतु अपने ही बोझ से लदी हुई तथा क्लांत प्रतीत होती है। उन कुर्सियों पर दो दुबले से नवयुवक बैठे हुए समाचारपत्र पढ़ रहे हैं। एक चश्माधारी नवयुवक दाहिने कोने में कैंची और लेई की सहायता से अखबारों की विशेष कतरनें फाइल में चिपका रहा है। चौथा नवयुवक—जिसने एक आधी आस्तीन की कमीज और पतलून पहन रखी है—कमरे के मध्य में स्टैंड पर एक चित्र बनाने में व्यस्त है। उसने स्टूल पर अपना बायाँ पैर रख रखा है। बायें हाथ में रगों की प्लेट है और दाहिने में तूलिका।

कमरे के दाहिने कोने में एक सुराही कलईदार लोटा और निकट ही एक झाड़ू भी उपेक्षापूर्वक रखा हुआ दीख पड़ता है।

अखबार पढ़नेवाले महाशयों में से एक, जिनके हाथ में बेंत की एक पतली लचीली छड़ी है, उठकर बुरी तरह जम्हाई लेते हुए युवक चित्रकार के निकट आते हैं।]

छड़ीवाले महाशय—हैलो अनुपम!

अनुपम—(मुड़कर पीछे देखकर) अरे! तिवारीजी हैं। कहो भई कब आये? आज एक अरसे के बाद दिखलायी पड़ रहे हो।

तिवारी—(छड़ी घुमाते हुए) मैं जिस समय आया था उस समय तुम चित्र बना रहे थे। मैंने तुम्हारी तल्लीनता में आघात पहुँचाना उचित न समझा। चुपचाप अखबार पढ़ने लग गया। अब तुम्हारा काम खतम सा होता देखकर तुम्हें डिस्टर्ब करने आ गया। ('ही ही' कर हँसता है)

अनुपम—(तूलिका चलाता हुआ) काम खतम होता देखकर ? हुँ (व्यंगपूर्वक) चित्रकला के संबंध में, (रुककर) देखता हूँ, आपका ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा है ।

तिवारी—(खिसियायी हँसी हँसकर) हें हें अरे कहाँ भाई ! हमसे तो प्रत्येक कला कोसों दूर है । (तनिक चुप रह) तो कब तक पूरा हो जायगा यह चित्र ?

अनुपम—(हँसता है, जैसे तिवारी का उपहास कर रहा हो) बड़ा विचित्र सवाल है।

तिवारी—(घिघियाकर) क्यों क्या बात विचित्र है ?

अनुपम—चित्र कब पूरा होगा—इस विषय में मैं क्या कह सकता हूँ ? ईश्वर अवश्य कह सकता है—यदि उसका अस्तित्व है तो ।

तिवारी—(परेशानी से) क्या मतलब ?

अनुपम—(हाथ फैलाता हुआ) मतलब यह कि मैं कोई निश्चित तारीख नहीं दे सकता कि उस तारीख को यह चित्र समाप्त हो जायगा। हो सकता है, यह दो हफ्ते और ले, या यह भी हो सकता है कि यह महीनों तक चले।

तिवारी—(लज्जित-सा) हाँ हो सकता है।

अनुपम—और इसका भी मतलब यह है कि चित्रकार की दृष्टि में उसका चित्र सदैव ही अपूर्ण और अधूरा रहता है। हर बार उसे अपनी रचना में कोई न कोई कमी या खटकनेवाली वस्तु दीख पड़ती है और वह उसे ठीक करते समय यही सोचता है कि चित्र अभी अधूरा है। उसे पूरा होने में अभी और समय लगेगा। (ठहरकर) अंत में एक दिन ऐसा आ जाता है कि वह ऊब उठता है और कह देता है कि उसका चित्र पूरा हो गया है यद्यपि वह स्वयं जानता है कि यह झूठ है और वह लोगों के साथ अपने को भी धोखा दे रहा है। (रुककर तिवारी के कंधे पर हाथ मार मुस्कराते हुए) समझे जी तिवारी महाशय। (फिर रुककर) हटाओ जी इन बातों को। असली बात तो आप छोड़ ही बैठे। कहाँ रहे इतने दिनों तक ? बहुत दिनों बाद आये हो।

तिवारी—(हँसता हुआ सा) हाँ ऽऽऽ। पूरे एक माह बाद आया हूँ। लेकिन मैं तो प्रधान जी से कहकर गया था, (तनिक ठहरकर) मैं क्या गया था, बल्कि उन्होंने ही मुझे भेजा था। उन्होंने क्या कहा नहीं ?

अनुपम—नहीं तो। इस संबंध में कभी बात तक भी नहीं हुई। हाँ एक दिन प्रधानजी यह अवश्य कह रहे थे कि संघ के कार्यकर्त्ता आजकल इधर उधर बिखरे हुए हैं इस कारण यहाँ का काम बहुत ढीला पड़ रहा है। रशीद और दिवाकर भी लगभग दो तीन हफ्तों से ऑफिस से गोल हैं। शायद वे भी कहीं बाहर गये हुए हों।

तिवारी—दिवाकर की बाबत तो मैं जानता हूँ। उसका एक पत्र आया था। वह अपने ससुर की आँख का ऑप्रेशन कराने दिल्ली गया हुआ है। वहाँ शायद वह श्रद्धानंद अनाथाश्रम की रिपोर्ट तैयार कर रहा होगा। इस तरह एक पंथ दो काज हो गये। (खिसियायी सी हँसी हँसता है)

अनुपम—(कुछ व्यंग से) एक पंथ दो काज ठीक है। और आप कहाँ गये थे ? (अकस्मात) माफ कीजियेगा, कहाँ भेजे गये थे।

तिवारी—(सफाई सी देता हुआ) अखबार में तो पढ़ा ही होगा। पिछले महीने, देहरादून में रिस्पना के किनारे बसे हुए चमारों के झोपड़ों में भीषण आग लगी थी। आध मील की तमाम बस्ती राख हो गयी थी। सभी सेवा समिति आदि के प्रतिनिधि वहाँ गये थे। अपने दल की ओर से मैं वहाँ गया था। (कुछ काँपकर) ओफ ! बहुत 'पिटियेबल साइट' थी। उन लोगों का रोना धोना—उन लोगों की बेबसी—ओफ ओ ! (अनुपम को सोचते हुए देख) घर में चोर आता है तो सब कुछ नहीं ले जाता, कुछ न कुछ तो छोड़ ही देता है, पर घर में आग लगती है तो कुछ भी चीज नहीं बचती—सोने के लिए फटी गूदड़ी तक नहीं, पानी पीने के लिए टूटी कटोरी तक नहीं। (तनिक चुप रहकर) हम लोगों ने वहाँ कई मीटिंगें कीं, दिल पिघलानेवाले भाषण दिये। जनता से रुपया इकट्ठा किया। राशनिंग ऑफिस से उन बेचारे मुसीबतजदों को अनाज दिलवाया तुमने तो यह सब पेपर में पढ़ा ही होगा। निकला तो था मेरा नाम भी था।

अनुपम—(बात अनसुनी कर) तिवारीजी महाशय, आपकी ससुराल भी शायद देहरादून में ही है ?

तिवारी—(सिर हिलाकर हिचकिचाते हुए) हाँ है तो। लेकिन

अनुपम—(बात काटकर) और आप शायद इस बार अपने साथ अपनी श्रीमतीजी को भी यहाँ ले आये हैं जो शायद एक लंबे अरसे से मायके में थीं (तिवारी को कुछ भी कहने का अवसर न देता हुआ) और शायद जिनकी मौजूदगी की सख्त जरूरत आप काफी समय से अनुभव कर रहे थे।

तिवारी—(अपनी आवाज में आश्चर्य के साथ कुछ कठोरता लाते हुए) मिस्टर अनुपम आप क्या कह रहे हैं !

अनुपम—(स्टूल पर पैर रखता हुआ) जो आप सुन रहे हैं। (तनिक ठहरकर) आप शायद यह बातें सुनना नहीं चाहते थे। आप चाहते थे कि मैं आपको समाज सेवा के लिए बधाई दूँ। आपकी पीठ थपथपाऊँ। आपकी प्रशंसा करूँ जैसी कि हम सबकी आदत है। और आप मन में खुशी के मारे

किंतु प्रकट में अत्यंत नम्र बनकर कहें—(नकल करता है) 'अजी मैं किस लायक हूँ ? सब आपकी कृपा है। अजी यह तो मेरा कर्त्तव्य था। मैंने तो अपना तमाम जीवन समाज-सेवा के लिए ही दे दिया है।' (रुककर) माफ कीजियेगा, आपके ही एक सहयोगी कार्यकर्त्ता की हैसियत से मैं यह झूठी 'एक्टिंग' नहीं कर सकता।

तिवारी—(बौखलाये-से) मिस्टर अनुपम, तुम... तुम्हारा दिमाग इस समय ठीक नहीं है। ग्वासी बहकी बातें कर रहे हो। मैं प्रधानजी से यह सब कहूँगा।

[अखबार पढ़नेवाले नवयुवक और चश्माधारी—तीनों ही—चौंककर इन दोनों के पास आ जाते हैं और तिवारी को पीछे ले जाते हैं जो कि शायद इसके लिए तैयार ही है। तिवारी को कुर्सी पर बैठाकर अखबारवाले युवक अखबार द्वारा तिवारी को हवा करते हैं। चश्माधारी नवयुवक अनुपम की ओर बढ़ता है।]

अनुपम—(तिवारी को देखता हुआ) दिवाकरवाली बात ठीक यहाँ पर भी है... एक पथ दो काज... (चेहरे पर व्यंग-मुस्कान।)

चश्माधारी—(बंगला टोन में) 'बी क्वायट' अनुपम ! आज इतने 'फ्युरियस' क्यों हो रहे हो ? 'ह्वाट इज द मैटर ?'

अनुपम—(शान्तिपूर्वक) 'नथिंग' हाल्दार। आज कुछ ऐसी बातें कह डालीं जिन्हें कहने के लिए बहुत दिनों से सोच रहा था।

हाल्दार—(न समझते हुए) क्या बोला तुमने ?

[अनुपम कोई उत्तर न देकर निर्विकार भाव से फिर चित्र बनाने लग जाता है। तिवारी महाशय बीच में मुड़ मुड़कर अनुपम की ओर देख लेते हैं। हाल्दार अपनी जगह पर लौट आता है और अखबार की कतरनें बटोरने लगता है। कुछ मिनट इसी प्रकार शांति से व्यतीत होते हैं।

सहसा एक नवयुवक का कुछ अखबार लिये हुए प्रवेश। वह खद्दर की धोती-कुर्ता पहने हुए है। चेहरे और गले पर पसीने की बूँदें। अखबारों को वह जोर से मेज पर पटकता है। इस खटके से चौंककर कमरे के चारों व्यक्ति अपना सिर उठाते हैं। अनुपम के अतिरिक्त तीनों फिर छुई लाजवती की भाँति अपना सिर झुका लेते हैं। अनुपम को एकटक अपनी ओर देखता हुआ पाकर वह युवक अनुपम की ओर बढ़ता है।]

युवक—(उँगली से माथे का पसीना पोंछते हुए) उफ्फो ऽऽ, थक गये हम तो। गर्मी ने अलग मार दिया। तुम्हीं मजे में हो भाई। कम से कम साये में तो बैठे हो।

अनुपम—(उसी की ओर देखता हुआ) क्यों-क्या। खैरियत तो है ? क्या फावड़े चलाकर आ रहे हो ?

युवक—उससे भी कहीं ज्यादा। (जरा चुप रहकर) आज काम पूरा करके ही आया हूँ। कई दिन हो गये थे दौड़ते दौड़ते।

अनुपम—(माथे पर सजा दो बल डालकर) क्या काम?

युवक—अरे वही पुस्तकालय वाला। आज साप्ताहिक 'बिजली' में अनाथ बच्चों के लिए किताबों की अपील निकलवा ही दी है। वैसे दैनिक 'संसार' में तो उस दिन शाम के एडिशन से ही अपील निकलनी शुरू करवा दी थी जिस दिन प्रधानजी ने अनाथालय में बच्चों को उस पुस्तक के लिए धक्का मुक्की और गाली-गलौज करते हुए देखा सुना था। (तनिक ठहरकर) और किताब क्या थी भला वह "बाल खुबशा।"

अनुपम—(चुप है जैसे उसकी बातों की मीमांसा कर रहा हो)

युवक—(अनुपम को चुप देख) वैसे कोशिश तो यह भी कर रहा था मैं कि किताबों की अपील संपादकीय नोट के साथ मासिक 'जागृति' में भी निकल जाय। इस सिलसिले में 'भ्रमर'जी से भी मिला था। बेचारे 'पेपर कंट्रोल' के कारण अपनी विवशता प्रकट कर रहे थे। कह रहे थे कि पत्रिका पहले ही बत्तीस पन्नों की जा रही है उसमें तो जरा सी भी गुंजाइश नहीं है। (तनिक चुप रह) आदमी बहुत सज्जन हैं। अपना तमाम समय सार्वजनिक सेवाओं में ही लगाते हैं। बहुत सहानुभूति प्रकट कर रहे थे बेचारे किताबों के उन इच्छुक व शौकीन बालकों के वास्ते। यह भी कह रहे थे कि बच्चों के वास्ते किताबें तो उनके प्रेस में भी पड़ी होंगी—समालोचना आदि के लिए आ जाती हैं न—परंतु उनका ढूँढ निकालना बहुत ही कठिन होगा।

अनुपम—(व्यंग मुस्कान के साथ) हूँ, बहुत दयालु और करुण हृदय हैं तुम्हारे संपादकजी। शायद जेल भी हो आये होंगे एक दो बार।

युवक—हाँ शायद सन बयालीस के आंदोलन में जेल भी हो आये हैं।

अनुपम—(व्यंगपूर्वक) हाँ, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और नेताओं के लिए यह वस्तु भी बहुत आवश्यक है।

युवक—(चकित सा होकर) जेल जाना आवश्यक है। क्यों? क्या मतलब है तुम्हारा इससे?

अनुपम—तुम मतलब नहीं समझ सके? जब यह इतनी गूढ़ बात है तो हटाओ इसे। (सहसा विषय पलटकर) हाँ, देखें जरा तुम्हारी साप्ताहिक वाली अपील।

युवक—(प्रसन्न होकर) हाँ, अभी लो। (मुड़ता है और मेज पर से अखबार खोलकर लाता हुआ) अपील बहुत प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी है। बहुत दिमाग खर्च

करना पड़ा है मुझे इसे लिखने में। (अखबार अनुपम को थमाता हुआ) एक पूरी रात जागरण किया गया है इसके लिए। (मुख पर गर्वमुद्रा)

अनुपम—(पढ़ता है) "आपसे एक नम्र निवेदन—आपके अनाथ बालक, आप लोगों के भरोसे किताबों के लिए तरस रहे हैं—उन निस्सहाय बालकों को मत भूलिए। सर्वसाधारण इस बात से अभिज्ञ होंगे कि बालकों को पुस्तकें पढ़ने का बहुत चाव होता है, किंतु सामयिक-परिस्थितियाँ कुछ ऐसी विकृत हो गयी हैं कि आपके अनाथ बालकों को पुस्तकालयों की अत्यावश्यकीय वृत्ति स्थगित कर रखनी पड़ रही है। अनाथालय में बालकों के पढ़ने योग्य पुस्तकें न्यून संख्या में हैं, जब कि बालकों की संख्या प्रति वर्ष बढ़ रही है। बालकों के उत्कट पुस्तक-प्रेम को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि उनके लिए एक सुंदर पुस्तकालय स्थापित किया जाय, जिसमें उनके ज्ञान-शिक्षा की वृद्धि हो। इसका एकमात्र साधन पुस्तकें ही हैं। अतएव आप लोगों से प्रार्थना व आशा की जाती है कि आप धन अथवा पुस्तकों द्वारा पुस्तकालय स्थापित कराने में हमारी पूरी सहायता करेंगे तथा अनाथों की सहायता और विद्या प्रसार व प्रचार के पुण्य अनुष्ठान में भागी होकर अपने उन मातृ-पितृहीन बालकों का भविष्य उज्ज्वल बना देंगे। जो सज्जन पुस्तकालय की स्थापना के लिए सहायता प्रदान करना चाहते हैं वे कृपया 'समाज सेवक संघ' ऑफिस—१८० स्टेनली रोड पर पधारने का कष्ट करें। निवेदक—प्रमोदकुमार।"

सुमन—(जिसके चेहरे पर इतने तमाम समय संतोष और प्रसन्नता के भावों का आदान प्रदान होता रहा है) क्यों ? कैसी है अपील ?

अनुपम—(कुछ सोचते हुए) सुंदर बहुत सुंदर! (निःश्वास सा लेता हुआ) पर आपने अपील के नीचे अपना नाम क्यों डाल दिया !

प्रमोद—(आश्चर्य प्रकट करता हुआ) क्यों, कुछ बुरा कर दिया ? (तनिक ठहर) यह 'ड्राफ्ट' मैंने की थी, प्रेस में दौड़ने की तकलीफ भी मैंने की थी और इसे छप वाने के लिए संपादक की खुशामद भी मैंने ही की थी। (ठहर कर) अगर मैंने इस पर अपना नाम लिख ही दिया तो कोई गुनाह तो नहीं कर डाला ?

अनुपम—(तीखे स्वर में) तुम गुनाह की परिभाषा भी नहीं जानते शायद ? तुम्हें चाहिए था कि तुम अपील के नीचे प्रधानजी का नाम दे देते। प्रधानजी के सामने हम लोग तो कोई चीज नहीं हैं न !

प्रमोद—(तिक्त स्वर में) प्रधानजी से इसका कोई संबंध नहीं है। उन्होंने मुझे यह काम करने का आदेश नहीं दिया था। यह तो मैंने स्वयं अपनी इच्छा से किया है।

अनुपम—(व्यंगपूर्वक) और इसी कारण शायद आप इस काम का श्रेय स्वयं ही लेना चाहते हैं।

प्रमोद—(चिढ़कर, कटुतापूर्वक) फिलहाल तो मैं यह नहीं चाहता—लेकिन यदि आपका ऐसा ही ख्याल है, तो मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट भी नहीं है। (तनिक रुक, परन्तु अनुपम को बोलने का अवसर न देकर) इसमें हर्ज ही क्या है। आखिर मैं भी तो आदमी हूँ।—मान, प्रशंसा, प्रतिष्ठा कौन नहीं चाहता। अपने घरों का तमाम काम छोड़कर हम लोग जो यहाँ समाज सेवा का काम करते हैं, क्या पैसे के लालच से? हम लोग, जिन्होंने अपना जीवन समाज-सेवा के लिए बर्बाद कर दिया है, रुपये पैसे तो क्या, पर क्या अपने नाम व प्रशंसा के भी अधिकारी नहीं हैं? हमारी सेवाओं का क्या कुछ भी मूल्य हमें नहीं मिलना चाहिए?

अनुपम—(प्रमोद से अधिक तेजी से) मैं समझता हूँ नहीं। आत्म संतोष ही हम समाज सेवकों का सबसे महत् पुरस्कार है जो हमें अपने हृदय की ओर से प्राप्त होता है।

प्रमोद—(किंचित व्यंगपूर्वक) आत्मसंतोष।

अनुपम—हाँ प्रमोद, आत्मसंतोष। अपना कर्त्तव्य पालन करने के उपरांत हमें चाहे संसार की ओर से बधाई, प्रशंसा और सम्मान मिले न मिले, किंतु अपने हृदय में हम एक अनिर्वचनीय संतोष और सुख का अनुभव करते हैं, जो संसार की क्षणिक प्रशंसा से कहीं ऊपर की वस्तु है। एक बार उस शांति का हृदय में अनुभव तो कर देखो, मैं दावे से कहता हूँ तुम कभी नाम मान अथवा सम्मान-पत्रों की चिंता न करोगे।

प्रमोद—(शांतिपूर्वक) तुम्हारी बातें यथार्थ जगत् के लिए ठीक नहीं हैं अनुपम। बीसवीं सदी की इस दुनिया में नाम और प्रतिष्ठा बहुत बड़ी वस्तुएँ हैं। लोग नाम के लिए प्राण तक दे देते हैं। निःस्वार्थ भाव से सेवा करनेवालों को कोई दो कौड़ी को भी नहीं पूछता। सभाओं, जलसों, अधिवेशनों, सम्मेलनों में उन्हें आदरपूर्वक स्थान तक नहीं दिया जाता। तुम कहते हो, निःस्वार्थ सेवा करने से हृदय को अपार संतोष मिलता है—मिलता होगा मुझे कभी नहीं मिला। वरन् उसके स्थान पर मिला—पग पग पर अपमान के कारण आत्मदहन, ग्लानि, भीषण दुःख व चिंता।

अनुपम—सुनो प्रमोद। तुम बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बातें कह रहे हो। समाज सेवा के क्षेत्र में एक तो तुम्हारा अनुभव अधिक नहीं है, दूसरे तुमने बिलकुल निःस्वार्थ हृदय से सार्वजनिक सेवाएँ नहीं कीं। तुम्हारे प्रत्येक कार्य में कुछ तुम्हारा अपना भी स्वार्थ निहित रहता था—ठीक दिखाकर और (तिवारी की ओर देखता हुआ)

तिवारीजी की तरह। इस कारण तुम असफल रहे और अब ऐसी भ्रामक बातें कह रहे हो।

प्रमोद—(चिढ़कर) मैं आश्चर्य कर रहा हूँ, अरे, तिवारीजी आदि के सबध में तुम इतना अधिक कैसे जान गये। तुम अतर्यामी मालूम पड़ते हो।

अनुपम—(भौं पर बल देकर) अतर्यामी—प्रत्येक मनुष्य अतर्यामी होता है। यदि दूसरे का नहीं, तो वह अपना स्वय का हृदय तो पढ ही सकता है।

प्रमोद—(जैसे उपहास कर रहा हो) क्या पढ सके हो तुम अपने अतर में?

दरवाजे के निकट से एक आवाज—निस्वार्थ सेवा, बिलकुल सच्चे हृदय से।

[कमरे के सब व्यक्ति चौंककर दर्वाजे की ओर देखते हैं। वहाँ एक अधेड़ से सज्जन खद्दर के कुरते, धोती, टोपी और काली जवाहरजैकेट में खड़े हैं। अपनी आकृति से वे बहुत ही गभीर व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

आगतुक महोदय कमरे में प्रवेश करते हैं।]

प्रमोद—(विस्मित स्वर में) प्रधानजी, नमस्ते।

कमरे के व्यक्ति—(हाथ जोड़) प्रधानजी, नमस्ते।

प्रधान—(हाथ जोड़) नमस्ते, क्षमा कीजियेगा प्रमोदजी, आपका प्रश्न सुनकर मैं उसका उत्तर दिये बिना न रह सका—यह तक न विचारा कि मेरा इस प्रकार उत्तर देना कितना उचित है और कितना अनुचित? किंतु मैं आपको यह विश्वास दिलाता हूँ कि अनुचित होने पर भी मेरा उत्तर सही है—इतना सही, जितना कि यह सही है कि सूरज से हमें गर्मी और रोशनी मिलती है।

प्रमोद—(कुछ लज्जित-से स्वर में) हम तो ऐसे ही आपस में एक दूसरे से बातें कर रहे थे।

प्रधान—ठीक है। आप लोगों को आपस में एक दूसरे के सबध में भी तो थोड़ी बहुत जानकारी रखनी चाहिए। इस समय मैं आपको प्रसगवश ही अनुपमजी के सबध में—यानी प्रमोदजी, उनकी नि स्वार्थ सेवाओं के सबध में—कुछ बतला देना चाहता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अनुपमजी स्वय अपनी बाबत कभी कुछ न बतलायेंगे।

अनुपम—(अपने को लज्जित-सा अनुभव कर) रहने दीजिये प्रधानजी! मेरे कामों पर आप व्यर्थ ही हाशिया चढा रहे हैं! आखिर इसकी आवश्यकता ही क्या है?

प्रधान—अब तक तो न थी, किंतु अब हो गयी है। प्रमोदजी की शका का समाधान तो आवश्यक है। प्रमोदजी, सबसे पहले मैं बगाल के अकाल की बाबत कहूँगा। आज वे सब बातें धुँधली पड़ गयी हैं। किस तरह मैं और अनुपम अकाल के क्षेत्रों में दौरे लगाते थे—'फर्स्ट एड' का सामान, बिस्कुट और हल्की रसद

लिये हुए। जगह जगह पर अनुपम कैमरे में प्लेटें चढ़ाते थे और रात को पेड़ों के नीचे उन्हें 'डेवलप' करते थे। अनुपमजी के फोटो सब बड़े और प्रसिद्ध अखबारों व मासिकों में निकले, लेकिन उनके नीचे—'फोटोज बाई अनुपम' या 'श्रीअनुपम के सौजन्य से प्राप्त' नहीं निकला, क्योंकि ऐसी अनुपमजी की इच्छा न थी।

अनुपम—(खिन्न स्वर में) रहने दीजिये न प्रधानजी, इन सबको। इन गड़े मुर्दों को क्यों उखाड़ रहे हैं आप!

प्रधान—(अनुपम की बात अनसुनी कर) अनुपमजी के चित्रों से जनता अकाल की भीषणता का अनुभव कर सकी। वहाँ से लौटने पर आपने (अनुपम की ओर संकेत कर) चित्र बनाने आरंभ कर दिये—एक साथ दो। साथ ही 'बंगाल रिलीफ फंड' के लिए जो नाटक खेला जा रहा था उसमें आप हीरोइन का पार्ट करने को तैयार हो गये—क्योंकि कोई भी उस पार्ट को नहीं करना चाहता था। दिन भर चित्र बनाते थे और रात को रिहर्सल। पूरे होने पर दोनों चित्र शायद सात सौ में बिके—(अनुपम की ओर मुड़) क्यों, सात सौ ही में तो बिके थे?

अनुपम—(झेंपता-सा) नहीं, पौने सात सौ के करीब।

प्रधान—(अपनी धुन में) हाँ, तो पौने सात सौ यह और तीन चालीस रुपए के ड्रामे में मैडल व इनाम मिले—यह सब अकाल ग्रस्तों के भोजन और वस्त्रों के वास्ते गये। और तारीफ यह है कि कोई भलामानुस इसे नहीं जानता। अनुपमजी की इन त्यागमयी सेवाओं की बाबत अब तक सिर्फ मैं ही जानता था। मुझे खुशी है, अब आप लोग भी यह बात जान गये प्रमोदजी भी और तिवारीजी भी

अनुपम—अब तो खतम कीजिये। या फिर मुझे यहाँ से बाहर चले जाने दीजिये।

प्रधान—नहीं अनुपमजी, आपको बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं समझता हूँ, इतना ही काफी है। क्यों प्रमोदजी?

प्रमोद—(गंभीरतापूर्वक विचार कर रहा है)

तिवारी—(उठ खड़ा होकर) मैं कुछ कहना चाहता हूँ प्रधानजी!

प्रधान—अवश्य कहिये।

तिवारी—आपसे हमने कॉमरेड अनुपम की निःस्वार्थ सेवाओं के संबंध में सुना, किंतु यह समझ में न आया कि इन सब बातों को हमें सुनाने का क्या प्रयोजन था? सभी आदमी तो कॉमरेड अनुपम नहीं हो सकते?

प्रमोद—(कुछ कटुतापूर्वक) और सभी आदमी प्रमोद और तिवारीजी भी तो नहीं हो सकते!

तिवारी—(आश्चर्यपूर्वक) क्या मतलब ?

प्रमोद—तिवारीजी, आप शायद यह सिद्ध करने पर तुले हुए हैं कि जो सेवाएँ—और जिस प्रकार—आप कर रहे हैं, केवल वही सही हैं और बाकी सब गलत। लेकिन यह शायद आपकी भूल है।

प्रधान—आगे मुझे कहने दो प्रमोद ! तिवारीजी, आपकी या प्रमोद की या दिवाकर की समाज सेवाएँ आप लोगों के समाज सेवा के उद्देश्य पर ही तो निर्भर करती है। अपनी सेवाओं की 'खडटनेस' पता लगाने के लिए आपको उनकी असलियत देखनी होगी। क्या वास्तव में आपकी सेवाओं में परोपकार, दया, सहायता, करुणा निहित है, या उनमें आपका कोई अपना ही मतलब छिपा हुआ है ? आप समाज सेवाएँ समाज के लाभार्थ ही करते हैं या केवल इस कारण कि इससे आपके अहं या आपकी अन्य किसी भावना की तुष्टि होती है ?

[सहसा बाहर से कोई कंपित कंठ में आवाज देता है—'प्रमोदकुमारजीऽऽ']

प्रमोद—(दायें हाथ द्वारा इशारा करता है) जरा ठहरिये, कोई मुझे पुकार रहा है।

[प्रमोद तेजी से उठकर बाहर जाता है। एक दो मिनट तक सब खामोश रहते हैं। तिवारीजी झोंझलाये से इधर उधर देखते हैं।

प्रमोद और उसके साथ एक दुबले-पतले व्यक्ति का प्रवेश। वह गबरून का काला कोट और खद्दर का पायजामा पहने हुए है—मैला और तेल व कालिख के दागोंवाला। सिर पर काली गोल टोपी और पैरों में बाटा के चप्पल। हाथ में एक बड़ा सा थैला लटक रहा है।]

प्रमोद—(आगंतुक से) बैठिये महाशय, (उसे सकुचाता देख कुर्सी आगे बढ़ाता है) झिझकते क्यों हैं ? बैठिये न !

[आगंतुक सहमा हुआ सा कुर्सी पर बैठ जाता है और अपना झोला धीरे से फर्श पर अपनी कुर्सी के पास रख देता है।]

प्रमोद—कहिये, क्या आज्ञा है ?

आगंतुक—(काँपते स्वर से, जैसे भय खा रहा हो) जी, कई दिन से अखबार में अनाथालय के बच्चों के लिए किताबों की जरूरत की खबर पढ़ रहा था। आज 'बिजली' अखबार में भी यह खबर देखी। मेरे पास कुछ यह किताबें (थैला जमीन से उठाता हुआ) बेकार रखी हुई थीं, मैं इन्हें उन जरूरतमंद बच्चों के लिए ले आया। (चेहरे पर आत्मसंतोष की भावना की लाली आ जाती है)

प्रमोद—(आभारी स्वर से) आपका बहुत धन्यवाद महाशय ! आपका यह उपकार चिरस्मरणीय रहेगा।

आगंतुक—(घबराकर) नहीं नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। मेरे पास भी तो यह किताबें

रखी हुई थीं, कुछ भी काम न आ रही थीं, अब कम से कम यह किसी के काम तो आ जायेंगी। (थैला प्रमोद को देता है)

प्रमोद—(थैले में से पुस्तकें निकालता हुआ) धन्यवाद महाशय, अनेक धन्यवाद। (पुस्तकों के नाम पढता है) बाल रामायण, सोने का झरना, आकाश-पाताल की बातें, विज्ञान की कहानियाँ, नेपोलियन बोनापार्ट, जापान का हाल, साहसी बालक, ध्रुव यात्रा, रॉबिंसन क्रूसो, इतिहास की कहानियाँ, अनजान देश में। (अत्यंत प्रसन्न होकर) महाशयजी, किन शब्दों में आपको धन्यवाद दिया जाय। बालकों को ऐसी ही उत्तमोत्तम और रोचक पुस्तकों की आवश्यकता थी। आपकी यह सहायता ही पुस्तकालय की स्थापना के लिए बहुत काफी है, (सहसा) किंतु महाशय, क्या मैं जान सकता हूँ, ऐसी उपयोगी और सुंदर पुस्तकों को आप अपने से अलग क्यों कर रहे हैं?

आगंतुक—(लड़खड़ाते स्वर में) जी, यह मेरे लड़के की किताबें हैं। मैंने इन्हें उसके लिए खरीदा था, लेकिन जब वह इन्हें पढ चुका तो उसे इनकी क्या जरूरत? यही सब तो मैंने उसे समझाया लेकिन (सहसा रुककर) लेकिन साहब यह तो सब बेकार सी बातें हैं। आप इन किताबों को रख लीजिये। बस! (उठ खड़ा होता है।)

प्रमोद—(चौंककर) किंतु अपना नाम तो बता जाइये जनाब।

आगंतुक—(घबराकर) नाम? मेरा नाम? लेकिन मेरे नाम का क्या कीजियेगा आप?

प्रमोद—(नम्रतापूर्वक) आखिर हमें इन किताबों के ऊपर इनके दाता के नाम का तो उल्लेख करना ही पड़ेगा।

आगंतुक—(मुड़ता हुआ) ओह! इसकी कोई जरूरत नहीं साहब कोई जरूरत नहीं मैं तो एक मामूली मजदूर हूँ, यहीं कारखाने में काम करता हूँ। मेरे नाम की भला क्या जरूरत है? अच्छा तो नमस्ते।

[बिना पीछे मुड़े आगंतुक का अपना खाली थैला हाथ में लिये हुए नापते डगों से प्रस्थान। कमरे के सब व्यक्ति निस्पंद तथा स्थिर हैं, जैसे सब को फालिज मार गया हो।

सहसा अनुपम एक गहरी साँस छोड़कर कमरे की हृदयहीन नीरवता को भंग करता है। विषादमयी बुद्धिमत्ता की एक फीकी झलक उसके चेहरे पर आ जाती है। कमरे के अन्य व्यक्ति उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि डालते हैं, किंतु बोलते कुछ नहीं।]

अनुपम—(मेज के निकट आता हुआ) प्रधानजी शायद कुछ कह रहे थे, लेकिन उनके बात पूरी करने से पहले ही मैं कुछ कहना चाहता हूँ (दो क्षण चुप रह कर) आप सब लोगों ने अभी देखा होगा दो मिनट पहले की इस घटना ने

हमारी समाजसेवा की कलई कितनी सुन्दरतापूर्वक खोल दी है। यह घटना हमारी सेवाओं की असलियत पर रोशनी फेंकती है, यह स्पष्ट रूप से बतलाती है कि हम कितने अंशों में सच्चे समाज सेवक हैं। (रुककर) अभी की इस घटना को लीजिये अनाथालय ने पुस्तकों की माग पेश की और इस गरीब मजदूर ने माग पूरी कर दी सम्वाद भेजने का स्थल था अनाथालय—वहाँ पुस्तकों की आवश्यकता थी—और उसे 'रिसीव' (ग्रहण) करनेवाला था—यह गरीब मजदूर जिसने पुस्तकों का दान दिया। एक ने माग पेश की, दूसरे ने वह पोस्ट पूरी कर दी। बाकी के हम सब तो केवल तार के खम्भे मात्र हैं—जड़ नीरव निश्चल।

[कदाचित् बहुत अधिक प्रभावित होने के कारण ही सब चुपचाप हैं, जैसे कुछ समझने की चेष्टा कर रहे हों। तिवारी का हिलना डुलना बन्द है। अनुपम अपनी कोहनी मेज पर टेक, ठोड़ी के नीचे मुट्ठी में तूलिका पकड़, अधखुली तथा विचारक आँखों से अतरिक्ष की ओर देखता हुआ, बैठा रहता है।

कमरे में सुई गिरने की आवाज का सन्नाटा है, केवल घड़ी टिक टिक कर कमरे में काल आभा भर रही है।]

पर्दा गिरता है।*

---

* पोलिश लेखक बोल्सलॉव प्रूस की एक कहानी से प्रभावित।

गुलाबराय

प्रभुजी मेरे औगुन चित न धरो

[कुछ आत्म-स्वीकृतियाँ]

सूर और तुलसी की भाँति मैं यह तो नहीं कह सकता कि मेरे दोषों को स्वयं माता शारदा भी सिंधु की दवात में काले पहाड़ की स्याही घोलकर पृथ्वी के कागज पर कल्प वृक्ष की कलम से भी नहीं लिख सकती हैं। इतने भारी झूठ के मोल में दण्ड खरीदने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है। बात यह है कि वे लोग तो कवि थे, उनकी अतिशयोक्तियाँ भी अलङ्कार बन जाती हैं। समरथ को नहिं दोष गुसाईं। महिम्नस्तोत्र के कर्ता बेचारे पुष्पदन्ताचार्य* ने जो बात भगवान के गुणों के लिए कही थी ('असित-गिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।') वही बात सूर और तुलसी ने अपने अवगुणों के लिए लिख दी। कवि तो भगवान की स्पर्द्धा कर सकता है, क्योंकि भगवान को भी कवि कहा गया है। 'कविं पुराणमनुशासितारम्' लेकिन बेचारे गद्यलेखक की क्या ताब जो अपने छोटे मुँह इतनी बड़ी बात कह डाले। हाँ फिर भी मुझमें अवगुण हैं और उनको मैं ही जानता हूँ—साँप के पैर साँप को ही दीखते हैं—उनको शायद परमेश्वर भी न जानते हों, क्योंकि जहाँ तक मैंने सुना है, वे भले पुरुष हैं, पुरुषोत्तम हैं और भले आदमी दूसरों के दोषों को स्वप्न में भी नहीं देखते और यदि देखते भी हैं तो सुमेरु से दोषों को राई बराबर। बुराई उनकी कल्पना की पहुँच से बाहर है।

ख्याति की चाह को मिल्टन ने बड़े आदमियों की अंतिम कमजोरी कहा है, लेकिन शायद यह मेरी आदिम कमजोरी है, क्योंकि मैं छोटा आदमी हूँ। यशलोलुपता के पीछे दुख भी काफी उठाना पड़ता है। ख्याति की चाह ही—जिसको मैं दूसरों की आँख में धूल झोंकने के लिए साहित्य सृजन की प्रारम्भ प्रेरणा कह दूँ—मुझे इस समय जाड़े की रात में गद्दे लिहाफ का सन्यास करा रही है। रोज कुआँ खोदकर रोज पानी पीने की उक्ति सार्थक करते हुए मुझे भी कालेज के लड़कों को पढ़ाने के लिए स्वयं भी अध्ययन करना

* शायद उनके दाँत बड़े बड़े होंगे, नहीं तो उनका नाम होता कलिका या कोरक दन्ताचार्य लेकिन बड़े दाँतवाला मूर्ख नहीं होता है, क्वचिद्दन्ता भवेन्मूर्खः। वे बेचारे ऐसे मुलायम दाँतों से खाते भी क्या होंगे—शायद दूध पीकर रहते हों।

पड़ता है। उसका सुध-बुध भलकर और यमदूत नहीं तो कम से कम कजूस कर्जख्वाह की भाँति मूर्फों के लिए प्रात काल ही अपने अवाञ्छित दर्शन देनेवाले प्रेस के भूत (कपोजीटर) की माँग की भी अवहेलना करके देश के दगा के शमन और शरणार्थियों के पाकिस्तान से निष्कासन की भाँति इस लेख को मैं चोटी की प्राथमिकता (top priority) दे रहा हूँ।

आचार्य मम्मट ने काव्य के उद्देश्यों म यश को सर्वप्रथम (यह शब्द मुझे सर्वप्रथम देव पुरस्कार विजेता का स्मरण दिलाता है) स्थान दिया है। काव्य यश से पहले और अर्थकृते को पीछे (बस वह पीछे ही रखने की बात है भूलने की नहीं) कहा था किंतु आजकल जमाना पलटने से उसका क्रम भी पलट गया है। त्रेता युग म लड़ाइयाँ भी यश के लिए ही लड़ी जाती थीं। रघुवश म कविकुल गुरु कालिदास ने कहा है 'यशसे विजिगीषुणाम्' किंतु आजकल विजय भी अर्थकृते ही की जाती है। फिर भी मुझ जैसा प्राचीन पथी 'चील के घोसले म माँस' की भाँति अर्थाभाव के होते हुए भी यश लोलुपता से पल्ला नहीं छुड़ा सका है। रेल की यात्राओं की यमयातनाओं के कारण (कभी कभी वे बहुत लम्बी यात्रा करा देती हैं) दूर के स्थानों की सभाओं का सभापतित्व करना छोड़ दिया है और उसके लिए मुझे इतना ही श्रेय मिल सकता है जितना कि वृद्धा वेश्या को सती होने का किंतु निकट के मथुरा, अलीगढ आदि स्थानों को कुछ अधिक आग्रह करने पर नहीं छोड़ता। स्थानीय सभाओं म, यदि वे निशाचरी वृत्तिवालो की न हों तो गीता का काला अक्षर भैंस बराबर जानते हुए भी गीता तक पर व्याख्यान देने और अपने अल्पज्ञ श्रोताओं का साधुवाद लेने पहुँच जाता हूँ। (काले अक्षर मेरे लिए भैंस बराबर ही हैं। वे मेरे लिए चन्द्रज्योत्स्ना-सा धवल यश और साथ ही कम से कम इस मत्र्यलोक में निरुपम, और यदि स्वर्ग तक पहुँच होती तो अमृतोपम दुग्धधारा का सृजन कर देते हैं। कभी-कभी भैंस की भाँति वे टस भी हो जाते हैं) दिमाग का दिवालियापन मैं सहज में स्वीकार नहीं करता और लोग करने भी नहीं देते। श्रवण समीर क्या मारे सर के बाल सफेद हो जाने पर भी, 'अग गलित' तो नहीं, 'पलित मुण्ड', अनश्वर और करीब-करीब ५० प्रतिशत 'दशनविहीन जात तुण्डम्' का (अभी करधृत कवितशोभित दण्डम् की बात नहीं आयी, दण्ड देने से म सदा बचता हूँ, रामचन्द्रजी के राज्य मे तो दण्ड यतिन कर मी था म यदि राजा होता तो उसका खरे की सीगों की भाँति अत्यताभाव करा देता किंतु खुदा गजे को नाखून नहीं देता) वार्द्धक्य का अच्छे सेकिंड सिटीजन का प्रमाण पत्र प्राप्त कर लेने पर भी 'भज गोविंद भज गोविंद मूढमते' की बात सोचकर लेखनी को विश्राम नहीं देता।

यश लोलुप होते हुए भी नेतागीरी से कुछ दूर रहा हूँ। लेखन कार्य में तो चारपाई पर पड़े पड़े भी यश लाभ की जुगाड़ि लग जाती है। नेतागीरी में दौर पैदल तो न्न

मोटर ताँगों में घूमना पड़ता है, (रक्तचाप के कारण तथा धनाभाव के कारण वायुयान में बैठकर देवताओं की स्पर्द्धा नहीं करना चाहता मनुष्य बना रहना मेरे लिए काफी है) गला फाड़कर कभी कभी बिना लाउडस्पीकर के भी व्याख्यान देना होता है, जाड़ों में भी शुद्ध खद्दर या बगुले के पंख से सफेद (बगुले की सफेदी के गुण की ही उपमा दी गयी है) कुरते में ही संतोष करना पड़ता है और घर पर मक्खन टोस्ट खाते हुए भी बाहर पार्टियों में चना गुड़ खाने का त्याग दिखाना होता है। खैर अब जेल जाने की बात नहीं रही।

उदारता तो कभी कभी छाती पर पत्थर रखकर कर भी देता हूँ किंतु बिना अहसान जताए नहीं रहता। जहाँ तक लक्षणा व्यञ्जना के साहित्यिक-साधनों की पहुँच है उन सबका प्रयोग कर लेता हूँ फिर भी यदि कोई संकेतग्राही चतुर पुरुष न मिला तो यथा-सम्भव अभिधा से भी काम ले लेने की निर्लज्जता कर बैठता हूँ। हाँ इतनी बात अवश्य है कि मैं उपकृत का सम्मान बहुत करता हूँ। उस पर अहसान जताते हुए उसमें हीनता का भाव उत्पन्न नहीं होने देता हूँ। मुझे तुलसीदास जी की बात याद आ जाती है। 'दान मान संतोष' उपकृत मुझे बड़ा बनने का अवसर देता है। उसका मैं सदा आभार मानता हूँ। अहसान जताने के लिए जब हार्दिक ग्लानि होती है तब माफी भी माँगा लेता हूँ, एक जगह यह भी सुनने को मिला 'जूता मारकर दुशाले से पोंछने से क्या लाभ?'

जहाँ यश प्राप्ति और धन लाभ के साथ आलस्य का संघर्ष न हो वहाँ आलस्य शीर्षस्थान पाता है। साधारणतया मैं बाबा मलूक दास के 'अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम, दास मलूका कह गये सबके दाता राम' वाले अमर काव्य को अपना आदर्श वाक्य बनाना चाहता हूँ और इस प्रवृत्ति के कारण संतोषी होने का श्रेय भी पा जाता हूँ किंतु इस युग में बिना हाथ पैर पीटे काम नहीं चलता 'नहि सुप्तस्य सिंहस्य मुखे प्रविशंति मृगा'

मेरी स्वार्थपरायणता मेरे आलस्य और आराम तलबी पर मान चढ़ा देती है, फिर शारीरिक शैथिल्य ने तो आलस्य का प्रमाण पत्र दे दिया है। मैं अपने पास पड़ोसी या संबंधी के प्र० प्र० पितामह का भी मरना नहीं चाहता। उसमें मानवता की मात्रा तो वाजिबी ही है किंतु उस शुभ कामना का असली उद्देश्य यह होता है कि श्मशान तक न जाना पड़े। जहाँ स्वार्थ-साधन की बात न हो वहाँ बड़ी से बड़ी भव्य बात भी फीकी पड़ जाती है। सरल साहित्य सेवियों की मंडली में जहाँ मुझे कुछ ज्ञान प्राप्ति की भी संभावना नहीं होती मैं भी उन लोगों की बातों में रस लेने का अभिनय सा कर देता हूँ। कभी कभी मेरी उदासीनता प्रकट हो जाती है। मैं पक्का उपयोगितावादी हूँ किंतु मेरा स्वार्थ सीमा से बाहर नहीं जाने देता। अपने स्वार्थ का यदि दूसरे के स्वार्थ से संघर्ष हो

तो मैं दूसरे के स्वार्थ को मुख्यता देता हूँ। मैं हमेशा यह चाहता रहता हूँ कि भगवान कहीं से छप्पड़ फाड़कर दे दें किंतु दुर्भाग्यवश मेरे मकान में कोई छप्पड़ नहीं है और मैं धन के लिए भी अपने मकान की छत तोड़ना नहीं चाहता। इसीलिए शायद गरीब हूँ। चुपड़ी और दो दो की बात नहीं हो सकती।

मान मद तो सुगम नहीं है फिर भी बड़े आदमियों द्वारा अपमान का सहन नहीं कर सकता हूँ। गरीब आदमी द्वारा किया हुआ अपमान मैं महर्षि भृगु की लात की भाँति सहर्ष स्वीकार कर लेता हूँ क्योंकि वह बिना किसी दम्भ के या बिना किसी हीनता ग्रंथि के सहज में दूसरे का अपमान नहीं करता। क्रोध भी मैं अपने से बड़ों पर ही करता हूँ। छोटों पर दिखावटी क्रोध भी नहीं करता। द्वेष तो मैं किसी से नहीं करता—बनिया जिसका यार उसको दुश्मन क्या दरकार? इसका अर्थ मैं यह लगाया करता हूँ कि बनिए का इतना सद्व्यवहार होता है कि उसके और उसके मित्रों तक के कोई दुश्मन नहीं होते। (जब यह कहावत बनी तब ब्लेकमार्केट नहीं थे) हाँ, ईर्ष्या अवश्य होती है। जब दूसरे लोगों को जो मेरे साथी थे मोटर पर चलता देखता हूँ और मैं स्वयं धूप निवारण करने के लिए सर पर कोट डालकर सड़क पर बिना द्रुमछाया के भी विश्राम विश्राम चलता हूँ तब इर्षा अवश्य होती है और सोचता हूँ कि मुझे भी कुछ अधिक साहसी, उद्योगी और थोड़ा बहुत बेइमान भी बनना चाहिए था। बनिए लोग वैसे तो फौज में जाते हैं, कप्तान और कर्नल बनते हैं और उन्होंने इस कलंक को धो डाला है कि क्या जाने वणिक् पुत्र गढ लेवे की बात। अब उन पर यह कलंक नहीं किया जाता कि 'लक्ष्मी अबला जाति' अथवा 'यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नोसि गजस्तत्र न हन्यते' फिर भी 'आहार निद्रा भय मैथुनञ्च' में और गुणों के साथ भय मुझमें प्रचुर मात्रा में है। इसे मैं पहले गिनाता हूँ। गीता पर व्याख्यान देते हुए मैं चाहे बड़ी डींग के साथ कह दूँ कि अभय को दैवी सम्पत्ति में पहला स्थान दिया गया है किंतु यह 'पर उपदेश कुशल' की बात है। निर्भयता की हिंदू मुसलिम दंगों में काफी परीक्षा हो गयी है। उन दिनों घर के दुर्ग से बाहर नहीं निकला। सरकार से मोर्चा लेने की बात मैंने कभी सोची भी नहीं क्योंकि जब जेल जाने के लिए प्रभु ईसा मसीह की भाँति ईश्वर से प्रार्थना करना पड़े कि 'या खुदा यह आफत का प्याला मुझसे टाल' तो फिर उस राह जाने से ही क्या काम? और जिस राह नहीं जाता उसके पेड़ भी नहीं गिनता। पुलिस को धोखा देने में मजा अवश्य आता है, बुद्धि के चमत्कार पर गर्व करने को भी मिलता है किंतु वह कम से कम महात्मा गांधी के अर्थ में बहादुरी नहीं कही जाती है। मुझमें न इतना साहस है और न इतना शारीरिक बल कि रात बिरात खाई-खंदकों में घूमता फिरूँ और फिर जेल में घर का-सा आराम कहाँ? (वैरागी बाबा तुलसीदासजी को राम नाम के उपमान के लिए घर से बढ़कर उपमान नहीं मिला 'सुखद

अपनो सो घर है) म काग्रेस जनों की बुराई करते हुए भी, गाधीजी की भॉति चार आने का मेम्बर भी न होता हुआ भी, लागों के आग्रह करने पर गाधी टोपी को पूर्णतया न अपनाने पर भी और जेल जाने का प्रमाण-पत्र न प्राप्त करते हुए भी काग्रेस के आदर्शों का परम भक्त हूँ। इस बात को शायद पिछली सरकार के सामने भी स्वीकार करने को तैयार था। कभी कभी अपने मित्रों से काग्रेस के पक्ष म लडाई भी लडना पडती है किंतु फिर भी निर्भयता का गुण नहीं अपना सका हूँ। जीवधारिओं की शेष कमजोरियाँ भी मुझमें उचित सीमा के भीतर वर्तमान है। अतिम को मेरी अवगुणों की सूची में अतिम ही स्थान मिला है। उसको म मानसिक रूप देने का ही गुनहगार हूँ क्याकि मनोभव का उचित स्थान मन म ही है। 'नेत्र सुख केन वार्यते' के सिद्धात को म मानता हूँ किंतु गजे के नाखूनों की भॉति नेत्र की ज्योति भी ईश्वर की दया से मद ही है। नेत्रों के पाप से भी यथासभव बचा ही रहता हूँ किंतु मानसिक दृष्टि मद नहीं हुई है। उस दिन को मैं दूर ही रखना चाहता हूँ जब मन मोदकों से भी वञ्चित हो जाऊँ।

आहार को पडिता ने पहला स्थान दिया है किंतु मैं उसे भय के पश्चात दूसरा स्थान देता हूँ। आहार जीवन की आवश्यकता ही नहीं वरन् जीवन का आनद भी है। डाक्टरों की कृपा से कहूँ या रोगो के प्रकोप से कहूँ आहार का आनद बहुत सीमित हो गया है फिर भी नित्य ही पाचन शक्ति के अनुकूल उसका थोडा बहुत भाग मिल जाता है। वाक्य मे अधिक सत्य परनिवृत्ति भोजनो म मिलती है। उपवास मे विश्वास रखते हुए भी म एकादशी व्रत तब तक नहीं रखता जब तक छप्पन प्रकार के व्यञ्जन नहीं तो कम से कम एकादश प्रकार के भोज्य पदार्थों के मिलने की सभावना न हो।

दोपहर का भोजन तो भर पेट कर लेता हूँ, उसमे तो म अपने नवयुवक बन्धुओं से बाजी ले जाता हूँ। सायकाल को म आधे पेट ही सोता हूँ गरीब भारत की आधे पेट सोनेवाली जनता की सहानुभूति मे नहीं और न अर्थाभाव से किंतु आंटे से वर्तमान शक्कर की मात्रा के पचानेवाले पन्क्रियस (pancreas) के रस के अभाव के कारण। उस अभाव की पूर्ति म इन्स्यूलिन के इञ्जेक्शनों से कर लेता हूँ। अवकार की भाति मेरा शरीर भी सूची भेद्य है और जैसा मने अन्यत्र लिखा है मेरे शरीर में जितनी सुइयाँ लग चुकी हैं उतने बाण भीष्म पितामह की शरशैया म भी न होगे।

मिष्टान्न का मै यथासभव सन्यास करता हूँ किंतु दूध के साथ शर्करा का वियोग कराना म पाप समझता हूँ। शरीर और शक्कर के जोड़े म एक का विच्छेद करने से मुझे क्रौंच मिथुन की बात याद आ जाती है और भय लगता है कोई वाल्मीकि जैसे करुणाद्र हृदय ऋषि मुझे भी शाप न दे दें कि 'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा' लेकिन शक्कर इतनी ही डालता हूँ जितना दाल मे नमक डाला जाता है या कोई आजकल के सभ्य समाज मे बिना आत्म सम्मान खोये कोई झूठ बोल सकता है। मिठाई में मोल

लेकर बहुत कम खाता हूँ क्योंकि मैं प्राप्त मोल नहीं लेता। अच्छे भोजन का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। मैं किसी के निमन्त्रण का तिरस्कार नहीं करता किंतु मर्यादा का ध्यान अवश्य रखता हूँ। फिर भी रोगमुक्त नहीं हो पाता हूँ क्योंकि डाक्टरों की बाँधी हुई सीमित रेखा का मान करने में मैं असमर्थ हूँ। दावतों में जाकर अपनी अन्तरात्मा को धोखा देने के लिए 'सर्वनाश समुत्पन्ने अर्धं त्यजेत पंडित' के न्याय से अपने पास बैठेवाले सज्जन को मिठाई का अर्द्धांश समर्पित कर देता हूँ किंतु क्या रक्खूँ या क्या दूँ के निर्णय का भार मैं अपने ऊपर ही रखता हूँ। 'परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे मा शरीरेषु दया कुरु' के सिद्धांत को मैं भूल जाने का प्रयत्न करता हूँ और इसी से मैं बचा हुआ हूँ।

जब मैं न बात करता हूँ और न पढ़ता हूँ तब मैं सोना ही चाहता हूँ। इसीलिए मैंने अपने ठलुआ क्लब का समर्पण सुख दुख की अपनी चिरसंगिनी परम प्रेयसी शैया देवी को किया है। रियासत में रहकर मुझमें दो ही विलासताएँ आयी हैं, एक दिन में सोने की और दूसरी धूप में न चलने की। धूप निवारण के लोभ से ही मैं ग्रामों के राज्य में भी कोट को इसी तरह साथ रखता हूँ जिस तरह बंदर अपने मरे हुए बच्चे को। रात को सोने ही के प्रेम के कारण मैं सिनेमा आदि ताश खेलने के दुर्व्यसनों से बचा हुआ हूँ। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो रात भर जागकर 'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी' की भगवान कृष्ण की उक्ति को सार्थक करते हैं।

लोग मुझे धार्मिक समझने की मूर्खता करते हैं और बड़ी श्रद्धा से धर्म-चर्चा करते हैं। मैं यथासंभव उनका स्वप्न भंग नहीं करता। ऐसे श्रद्धालु लोगों को संतुष्ट करना कठिन नहीं होता है। धार्मिकता की विडंबना किये बिना मैं उनकी बातों का यथामति उत्तर दे देता हूँ। उत्तर देकर यदि ज्ञाताओं की सूची में मेरा नाम आ जाय तो 'वचने किं दरिद्रता।'

मैं अधार्मिक या अत्याचारी नहीं हूँ। मैं गोस्वामी तुलसीदासजी के इन वचनों में कि 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई' सोलह आना विश्वास करता हूँ पर इतना धर्मभीरु भी नहीं जो पाप के नाम से डरूँ। झूठ भी जैसे ईद बकरीद जुलाहा पान खा लेता है मैं बोल ही लेता हूँ अर्थलाभ के लिए तो नहीं किंतु मान मर्यादा की रक्षा के लिए या किसी दूसरे की रक्षा के लिए। कभी बेवस होकर बिना टिकट के रेल में सफर भी कर लेता हूँ किंतु उसका पश्चात्ताप नहीं होता। पकड़ा न जाऊँ तो उस बेवसी के किये हुए पाप को सहज में भूल जाता हूँ किंतु तांगेवाले को कम पैसे देने में अवश्य दुख होता है।

चोरी मैं बड़ी चीज की तो नहीं करता किंतु छोटी चीज की कभी-कभी कर लेता हूँ, वह पाप भी चीज की पसंद पर न्यौछावर कर देता हूँ। कभी कभी अच्छी पुस्तकें जिनकी संख्या एक हाथ की अँगुलियों पर की जा सकती है मैंने चुरा ली हैं, वह भी उनके यहाँ

से जिनके यहाँ मैंने आतिथ्य स्वीकार किया है। उनमें एक कीथ महोदय का संस्कृत ड्रामा है। वह भी कोई मुझ सा सहृदय मुझसे माँगकर लौटाना भूल गया है। अपरिग्रह अर्थात् त्याग म जरूरत से ज्यादा नहीं करता हूँ। मैं दुनिया मे और लोगों की भाँति आराम चाहता हूँ, कुछ कुछ वैभव भी किन्तु दूसरो को सताकर नहीं। जिस तरह लोग कला का कला के लिए अनुशीलन करते हैं वैसे मैं धन के लिए धन का अनुशीलन नही करता, फिर भी धन के लोभ लालच से मैं परे नहीं हूँ। धन मेरे लिए साधन है, साध्य नहीं है।

इन सब अवगुणों के होते हुए भी मैं परेशान नहीं हूँ। जब तक कोई आफत सर पर न आ जाय मैं भगवान से भी दया की भिक्षा नहीं माँगता (किसी दूसरे से भी माँगने में मुझे लज्जा नहीं आती किंतु मैं मनुष्य के एक बार नहीं करने या मौन हो जाने पर दुबारा नहीं मुँह खोलता) म पूजा पाठ सौंदर्योपासना के रूप में मन को खुश कर लेने के लिए भोजनों की प्रतीक्षा में कर लेता हूँ। लोग कहते हैं भूखे भजन न होइ गुपाल किंतु म भूख मे ही भजन करता हूँ। मुझे धूप की गध बड़ी अच्छी लगती है। बिना मन्त्रों के ही कभी कभी हवन कर लेता हूँ। भक्ति भावना से नही वरन् नाद सौंदर्य के कारण कभी देवताओं के स्तोत्र पढ लेता हूँ। और कभी कभी जल्दी में गीता के 'पितासि लोकस्य चराचरस्य' के साथ भर्तृहरि के शृगार शतक के भी श्लोक 'विश्रम्य विश्रम्य द्रुमाराम छायासु तन्वी विचचार काचित्' या कालिदास के मेघदूत का शाकुन्तल के तन्वी श्यामा शिखरिदशना वाला श्लोक पढ जाता हूँ। इसके लिए मैं स्वर्ग से विमान आने की प्रतीक्षा नहीं करता। मेरा धर्म स्वात सुखाय है।

और कुछ न लिख सकने के कारण मानसिक दरिद्रता की आत्मग्लानि निवारण करने के लिए मैंने ये आत्म स्वीकृतियाँ लिख दी हैं नहीं तो अपना भरम न खोलता। बौद्धो में तथा रोमन कैथोलिकों मे पापों की आत्मस्वीकृति विधिवत की जाती है और उसकी गणना पुण्य कार्यों में होती है। मुझे मालूम नहीं कि इस पुण्य का क्या फल मिलेगा। इतना ही बहुत है कि इस आत्मस्वीकृति मे जितना आत्म विज्ञापन है उसे जनता उदारतापूर्वक क्षमा कर दे।

जैनेंद्रकुमार

मेरे साहित्य का श्रेय और प्रेय

रेडियो की यह माँग कि मैं अपने साहित्य का श्रेय बताऊँ और प्रेय बताऊँ, मुझे कुछ हैरान करती है। इसलिए पहले तो खयाल हुआ कि इस सवाल का जवाब देने का जिम्मा मैं न उठाऊँ और बात टाल छोड़ूँ। कह दूँ कि जो मेरे नाम पर छपा हुआ मिलता है, उस माल पर पढ़नेवालों का हक है, मेरा नहीं। लिहाजा इस तरह के सवाल उनसे कीजिये। लिखकर मैं बरी हुआ, छपकर यह चीज मुझसे छिन गयी और पब्लिक बन गयी है।

लेकिन सच यह कि उस सवाल ने मुझे खींचा भी है। इसलिए नहीं कि सचमुच अपनी तरफ से कोई खास श्रेय डालकर मैंने लिखने का काम किया है। बल्कि, इसलिए कि उससे मुझे अपने को टटोलने की जरूरत पैदा होती है।

जवाब देते वक्त सवाल के प्रेय शब्द को मैं उड़ाये दे रहा हूँ। आँखों को अच्छा लगे वही न प्रेय ! यानी प्रेय सदा रूप होता है। पर विवेक रूप नहीं, गुण देखता है। या कहें कि गुण की अपेक्षा में रूप को देखता है। इस तरह लिखने के मामले में मैं प्रेय का अविश्वासी हूँ। यह नहीं कि आँखें रूप पर नहीं जातीं, पर साथ ही चाहता हूँ कि मन वहाँ न जाय। लेखक की हैसियत से, इसलिए मैंने रूप पर जानेवाली आँख को दम भर बहकने नहीं दिया है। मतलब मेरी रचनाओं में सुन्दरता नहीं है। रूप सौंदर्य के वैभव को मेरी कलम नहीं छू सकी और बखा उतार सकी है। कहीं उसका आभास मिलता हो तो मेरी ओर से शायद व्यंग का इशारा भी वहाँ पहुँचा है। रूप एक मुसीबत लगता है, उसके लिए भी कि जिसका हो, फिर उसका तो कहना क्या जो उसे देखे और रीझे। रूप इस तरह छल है। इस ओर पर वह मान है, तो दूसरी ओर मोह। अपनी दृष्टि का ही मोह बाहर दृश्य में रूप की सृष्टि करता है। "अध्यापक के लिए जो लड़की निकम्मी है, उठते युवक के लिए वही सारी दुनिया बन जाती है।" इसे आँखों का ही फर्क कहना चाहिए। इसलिए रूप तो देखनेवाले की आँख में है, अलग वह कहीं नहीं है। सारांश, इस चर्चा में प्रेय को तो मैं छोड़कर ही चलना चाहता हूँ।

छोड़ने का मतलब कुछ और आप न लें। हम रहते और चलते हैं तो प्रेय के ही बल पर, प्रेय के ही पीछे। भगवान या आदर्श या सत्य कितना भी कुछ हो हमारा नेह

उससे नहीं लगा है तो वह हमारे अंदर किसी कोने में ही पड़ा रहेगा। या तब देखेंगे कि जीभ राम का नाम ले रही है तब मन प्रेयसी का ध्यान धर रहा है। राम की ओट में से काम झाँक रहा है। इसलिए और कुछ छोड़ सके, प्रेम को छोड़कर तो जीवन रह ही नहीं सकता। फिर भी प्रेम है छल। आगे दृश्य हर घड़ी अदलता बदलता रहे, तभी आँख काम करती और रस पाती है। चंचल न हो वह आँख नहीं। सोही रूप का हाल है।

तो इस उलझन का एक ही उपाय है। वह यह कि प्रेय तो रहे पर श्रेय से दूर न रहे। अर्थात् बाहर की बच कर हम अंदर की आँख से यानी विवेक से देखें। और बाहर की आँख को बराबर साधते रहें कि दीखनेवाले रूप को भी वह न दीखनेवाले गुण में ही देखे, अन्यत्र कहीं न देखे।

आखिर निर्गुण भगवान को इसी से तो मनुष्य के निकट सगुण बनना होता है। यह कौन कहे कि देह की ओर से राम और कृष्ण कामदेव से कुछ भी न्यून न रहे होंगे। फिर भी जब उनमें हमने भगवान की प्रतीति उतारी तो क्या अपने बस का सुंदर से सुंदर रूप भी उन्हें नहीं पहनाया? इस तरह हमारे ये पुराण पुरुष रूप की ओर से भी भुवन मोहन बने हुए हैं।

इसी से कहना होगा कि सत्य से सुंदर कुछ है ही नहीं। सूरज से धूप मिलती है, पर उस धूप में क्या रूप है? यदि है तो वह आँख के बस का नहीं है, इतना अरूप है। पर क्या उसी की कुछ किरणों में से सतरंगी धनुष हमको नहीं प्राप्त होता?

अब बालक धूप का तो आदी है, लेकिन आसमान में सतरंगी धनुष खिला देख कर वह किलकारी भर उठता है। उसके देखते देखते वह धनुष मिट जाता है, तब भी वह आस में रहता है कि कब फिर वही बाँकी सतरंगी कमान दीखने को मिले। मानों उस बालक के आनंद के निकट दुनिया बस धनुष के कारण ही सच हो। अन्यथा सब बेकार और व्यर्थ हो।

मानना होगा कि हमारी आँखें क्योंकि रूप पर ही खुलती हैं, इसलिए अगर कोई सत्य हो तो उसे हमारे आगे रूपवान होकर ही आने का साहस करना चाहिए। और सच-मुच साहित्य इसका ध्यान रखता है। आदमी की इस पहली असमर्थता का ध्यान न रख-कर चलनेवाला दार्शनिक जीवन भर सत्य तत्व खोजता और ग्रंथों में टाँककर असख्य शब्द दे जाता है। पर उन रत्नों को लूटने हाथ नहीं लपकते, जब कि संतो की निपट अटपटी बानी गीत और भजन बनी सब कहीं मुखरित दीख पड़ती है। सच पूछिए तो सुंदर नहीं है, तभी सत्य उपयोगी है। पर सत्य के उपयोग से किन बिरलों को काम! पहली माँग है लोगों को प्रेम की, और रूप से अंधे होकर प्रेम कैसे हो? मैं मानता हूँ कि साहित्य सत्य के प्रति मनुष्य में वही अनन्य प्रेम उत्पन्न करता है। सत्य का प्रेम यानी

उसका बोध नहीं चाह देता है। क्योंकि पाठक की रागात्मक वृत्तियों को चेताकर जिस प्रेम को वह उसके आगे प्रत्यक्ष करता है, उसकी परिणति फिर उत्तरोत्तर शिव और सत्य के सिवा कहीं है ही नहीं।

इस जगह आकर मान लेता हूँ कि प्रेय से मेरी छुट्टी हुई क्योंकि वह सरककर श्रेय में जा मिला और स्वय में खो गया।

तो, अब श्रेय की जहाँ तक बात है, वहाँ मैं स्वार्थ से हटकर भटकना नहीं चाहता। तब मेरे साहित्य में क्या श्रेय है जो पाठक को देने का कष्ट मैंने किया है—यह प्रश्न ही मेरे लिए नहीं रहता। जरूर अगर साहित्य में श्रेय होगा तो पहले लिखनेवाले के भाग में होगा। पढ़नेवाले को इस मामले में दोयम रहना होगा। मुझ पहले के बाद दूसरे पाठक को भी अगर उस प्रेय में का कुछ मिले तो उसकी कैफियत वह दे। मैं तो पाठक को यही कहूँगा कि उसके लिए वह किसी तरह मुझमें न अटके। मेरी रचना से उसे मिलनेवाला लाभ तो वह है जो उसने ले लिया है, मैंने नहीं दिया है। लेने से चूककर देनेवाला मैं कौन?

साराश, मैं 'स्वांत सुखाय' पर अटकने को तैयार हूँ। 'लोक हिताय' तक न भी जाऊँ तो भी कोई हानि नहीं देखता।

तो अपना श्रेय बताने को मैं अपनी आप बीती पर लौटूँगा। लिखना शुरू हुआ तब मेरी बुरी हालत थी। अन्दर से बुरी, बाहर से और भी बुरी। उमर काफी, करने को कुछ नहीं और पूछनेवाला कोई नहीं। अकेला, अविश्वस्त और असमर्थ। बस में और कहने को एक माँ। आयु में वृद्धा होती जाती हुई इस माँ को लेकर अपनी असमर्थता और अशक्तता पर मैं एड़ी से शुरू करके सिर तक अपने में डूबता ही जा रहा था। जैसे कोई साबित मुझे लील रहा हो। इस हालत में सोच होता कि दुनिया में तू किसी गिनती में भी भूल से ही हो पड़ा है। चल, नाहक धरती का बोझ क्यों बढ़ाता है! दिन तुझसे ढोए नहीं बनते। ऐसे में क्या काल से छुटकारा नहीं लेता और दुनिया को छुटकारा नहीं देता। पर यह ख्याल पूरा नहीं हो सका। क्योंकि माँ थीं, और उनका होना मुझे रोकता था। तब लगता कि नहीं, तू अभी मर न पायेगा। पर जी कैसे पायेगा यह भी कुछ ढूँढे न मिलता था। ऐसी बेबसी में मैंने लिखा और उस लिखने ने मुझे जीता रख लिया।

जानता हूँ, तरह-तरह की तजवीज हैं। एक शब्द है 'इस्केप'। अनुवाद ने उसे हिंदी में बनाया है 'पलायन', मेरे अपने मामले में लिखना शुद्ध 'इस्केप' और 'पलायन' था।

इसलिए पहला श्रेय मेरे साहित्य का यह हुआ कि उसने मुझे इस्केप दिया, मेरी रक्षा की। मैं भागकर उसमें छिप सका। इस तरह उसने मुझे जीने दिया। मेरे भीतर की आत्मग्लानि, हीन भावना और उनकी तहों में लिपटी हुई ममतावाली से—इस सब

झमेले को कागज पर निकालकर जैसे मैंने स्वास्थ्य का लाभ किया। जो मेरे अंदर घुट रहा और मुझे घोट रहा था उसी को जबरदस्ती खींचकर बाहर निकालने की पद्धति से, देखा कि मैं उससे मुक्ति पा रहा हूँ। उसके नीचे न रहकर उसके ऊपर आ रहा हूँ। जो कमजोरी थी और मुझे कमजोर कर रही थी उसी को स्वीकार कर लेकर और रूप पहना देकर मैं मजबूत बन रहा हूँ।

इस अनुभव पर से मुझे कहने दीजिये कि साहित्य का पहिला श्रेय है जीवनलाभ। उसी को कहें अपनी अंतरंगता की स्वीकृति और प्राप्ति, अपने भीतर के विग्रह की शांति, उलझन की समाप्ति और व्यक्तित्व का उत्तरोत्तर एकीकरण।

शुरू में जो लिखा वह उन दबी भावनाओं का रूपक न था तो क्या था जो स्थिति में यथार्थता से हार लौटकर कल्पना की सुरक्षितता में अपना प्रसंग बनाती और फिर वहीं डैने फैलाती हैं। क्योंकि क्रिया नहीं थी, इसलिए इसे प्रतिक्रिया ही तो कह सकता हूँ। तब, कुछ कहानियाँ बनीं जिनमें मैं जो खुद न बन सकता था, वह कहानियों के नायक बनते थे। मैं भीरु था, लेकिन कहानी लिखी गयी जिसका बाबू सरदार दिलेरी का मिसाल था। शरीर छूटा पसीना, मानो परीक्षा मेरी थी। फिर पीछे तो प्रकाशक ने, शायद अपनी बिक्री के हित में, उस मेरी परीक्षा को 'फाँसी' बना दिया। उन दिनों देशप्रेम के शब्द से हवा तक गूँजती थी और मैं घर में बंद अपनी निष्कर्मण्यमूढ़ता में ऊँघा करता था। सो कहानी लिखी गयी 'देश प्रेम' जिसमें दो प्रतापी पुरुष प्रस्तुत हुए। एक उनमें वाग्मी तो दूसरे कर्मशूर। इसी सन्नाटे में मुझ अकर्मण्य ने सधा करके एक कहानी लिख डाली जो नाम से भी 'सजा' बन गयी। जैनी होकर यहाँ चींटी न मरती थी, वहाँ कहानी में बम और तमचेवाले एक से एक बढ़कर जवान खड़े हो गये। बंगाल ने क्रांति का मन फूका था, मुल्ला की दौड़ मसजिद तक तो होगी, मेरी घर से आगे तक न थी। शायद इसी से मुझे घर बैठे बैठे बंगाल लाँघकर इटली तक जाना पड़ा। वहाँ के मेजिनि को नक्शा दिया, यह बहुत समझिये। नहीं तो गेरीबाल्डी को मेरी कलम की नोक के नीचे आना पड़ा और मेरा नचाया नाच नाचना पड़ा। अब सच कहता हूँ कि अगर उन कहानियों ने नहीं तो उनके लिखने ने मुझ साँस तोड़ते को साँस दी।

अब मानता हूँ एक यथार्थ होता है जिसके मुकाबले में दूसरा आदर्श होता है। होता होगा। उन मामलों में मैं कुछ जानता नहीं हूँ। अपने ही यथार्थ से मैं भला क्या खींच पाया? कोशिश करके तीस रुपए की नौकरी भी तो उसमें से मैं नहीं खींच सका। तब, जहाँ से ये तीन कहानियाँ खींच लाया और खींचकर उनके जोर से थोड़ा कुछ जी गया, उस तत्व को जो भी नाम दीजिये, उससे और उसके ऋण से बचकर मुझे कहाँ गति है? उससे टूट भी कैसे सकता हूँ? यथार्थ अगर वह नहीं है, तो फिर यथार्थ की

आवश्यकता भी मुझे नहीं है। उसी तरह आदर्श को भी उससे अलग होना या जानना मैं नहीं चाहता।

हमारे अंदर जो है, अव्यक्त है। मैला उसमें है, धौला उसमें है। उस सबको स्वीकार करके शनैः शनैः उसे बाहर व्यक्त रूप में निकाल देकर अपने को रिक्त करते जाना—मेरे ख्याल में यह बड़ा काम है। इससे अलग सर्जन क्या होना होगा, वह मैं जानता नहीं हूँ।

यह तो कहानी लिखने में से आया। फिर उस कहानी के छपने में से आया, वह भी श्रेय के जमाखाते में ही जायेगा। दर्पण में अपने को देखते हैं, तब अपनापन हम पर खुलता है। छपने से यही हुआ। लिखा था तब तक मेरा था, छपकर निकला तो सबका हो गया। इस तरह मैं सबमें छिप गया और बँट गया। और जो अंदर दर्द था, बाहर खिलकर वही रंग दे आया। साथ ही यह करिश्मा हुआ कि इधर से कहानी गयी और उधर से एक मनीआर्डर चला आया। तीन में से दो कहानियाँ द्रव्य की भाषा में तब कुछ नहीं कर सकीं, सही, पर तीसरी ने जाकर वहाँ से जो मनीआर्डर चला दिया, सो एक बहुत ही तिलिस्मी बात हुई। इसमें आत्मिक के अतिरिक्त कुछ शरीर का, इंद्रिय का स्वास्थ्य मिला, यह कहना चाहिए।

इसी पहले दौर में एक कहानी उठी और जरा चली कि मुझे उलझा बैठी। देखा कि मन में बड़े विकल्प उपज रहे हैं और कथा के तारों का ताना बाना फैलता ही जा रहा है। सचमुच मैं तो घबरा गया। छापे में छह आठ पृष्ठ में चीज आ जाये, यही तो बस है। पर यह बला तो इतने में समानेवाली नहीं दीखती। इस उलझन में तीन चार पन्ने लिखे हुए मैंने दूर हटा फेंके। पर करने को कुछ था नहीं, और यह जरा लिखने से मिली ताजगी तीन चार दिन में चुककर खतम हो गयी। फिर वही मुर्झाहट। सोचूँ कि लिखूँ तो वही पुराने तार सिर में गोरखधंधा मचाते हैं। आखिर टालता कब तक, और उस गोरखधंधे में ही खेले चला गया और लिखे चला गया। इसी में बन आयी मेरी पहली किताब 'परख'।

'परख' में क्या श्रेय है और क्या प्रेय है—इसके उत्तर में मुझे निश्चय है कि साहित्य का अध्यापक और विद्यार्थी अत्यंत प्रामाणिक रूप में बहुत कुछ कह सकेगा। पर मैं इतना जानता हूँ कि उसके सत्यधन की व्यर्थता मेरी है, बिहारी की सफलता मेरी भावनाओं की है और कट्टो वह है जिसने मुझे व्यर्थ किया और जिसे मैंने अपनी समस्त भावनाओं का वरदान देना चाहा। यानी यथार्थ की धरनी में उठकर मेरी भावना, धारणा और आशा अनायास भाव से उन सब चित्रों में बुन गयी हैं जिन्होंने एक पर एक आकर 'परख' को एक सूचना दी है।

इस ऊपर की बात से मेरा यह मतलब है कि लेखक को सीधे अपने जीवन में मिलने

सारा लाभ, साहित्य का पहला लाभ है। शायद उसको व्यक्तित्व लाभ ही कहना चाहिए। नहीं फिर प्रमुख श्रेय। यानी लिखने के द्वारा मने फिर क्या श्रेय देना चाहा है, यह गौण बात है। नाना चरित्रों की अवतारणाओं में से मैंने अपनी निजता में किन परिणतियों का उपभोग किया है, वही प्रथम और प्रधान बात है।

लेखक देने के लिए कुछ दे सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। पड़ोस का हलवाई जैसे तय कर सकता है कि आज मुझे यह इतना और वह उतना बनाना है, वैसे क्या कोई वृक्ष भी यह सोच सकता है कि इस बार मुझे सेब की जगह अपने ऊपर अनार उगाना है? जो स्वयं में है, उसके सिवा फल में कुछ और होगा ही कैसे? इसलिए सेब के यह तक सोचने की बात नहीं है कि मुझे फल में सेब देना है।

यह नहीं कि लेखक वृक्ष है। पर निश्चय लेखक हलवाई नहीं है। यानी अपने साहित्य द्वारा वह किसी इष्ट, श्रेय, या किसी अपने हेतु की प्रतिष्ठा करना चाहता हो तो यह लेखन कर्म से असगत बात नहीं है। लेकिन फिर वह इष्ट या उद्दिष्ट उसके लिए बौद्धिक प्रतिपादन का विषय नहीं होगा। अर्थात् भावना से अलग धारणा में, या कि वासना से अलग भावना में, उसकी स्थिति नहीं होगी। समूची मानसिकता में उसको रमा हुआ और समाया हुआ होना चाहिए।

अपने साहित्य में मंने कुछ शब्द द्वारा कहा है, कुछ चित्र के द्वारा व्यक्त किया है। सचित्र यानी कथात्मक साहित्य। वहाँ लेखक तो कुछ कहता नहीं, कथा के पात्र ही बोलते हैं। फिर उनकी बातें उन-उनके अनुरूप होंगी। ऐसे उनमें परस्पर की अनुकूलता होना सभव नहीं है, बल्कि प्रतिकूलता और अतर्विरोध होना अनिवार्य है। मुझे यह भी लगता है कि कथा, पात्र या व्यक्तित्व की एकता और निजता में जितना गहरा और गभीर विरोध समा सके उतना ही उसका महत्व है। फिर कथा के किस पात्र, या पात्र के किस वाक्य, और समूची चीज के किस पहलू में उस गुह्य को देखा जाये जिसको श्रेय समझ कर लेखक ने कलम उठायी है? स्पष्ट ही यह काम मुश्किल है और जोखिम से भरा है।

असल में तो एक कहानी, या एक पुस्तक, कुल मिलाकर एक प्रभाव है। उस प्रभाव की एकता में नाना तत्वों की अनेकता तो रहेगी ही। उन तत्वों की विविधता में रचना के श्रेय को भी विविध और विकेंद्रित नहीं देखना होगा।

सीधे शब्दों से जो बोलता है वह निबंध साहित्य तो, मैं मानता हूँ, मुझे पाठक के हाथों पकड़ायी दे ही देता होगा। कथा में व्यजना और व्यग्य का सहारा हो और उसके अभिप्राय के बारे में चाहे दुविधा हो, पर अपने निबंधों में तो काफी प्रत्यक्ष और स्थूल रूप से मंने अपनी धारणा के श्रेय को खोला और कसा है।

यहाँ एक प्रश्न याद आता है जो स्वर्गीय प्रेमचद से मैंने किया था। पूछा कि बताइये, आपने सारे लिखने का मूलभाव क्या है? तो सुनते ही कहा—'धन की दुश्मनी।'

मैं तब मालीगंज की तरफ रहता था। वहाँ शांति थी, और शायद ही कभी भंग होती थी। या खबरें मन यहाँ मिल जाती थीं, और कभी कभी आगामी 'प्रोग्राम' का कुछ पूर्वाभास भी। मन्त्रणाएँ यहाँ होती थीं, शरणार्थी यहाँ आते थे, सहानुभूति के इच्छुक आकर अपनी गाथाएँ सुनाकर चले जाते थे

आतंक का दूसरा दिन था। तीसरे पहर घर के सामने बरामदे में आराम कुर्सी पर पड़े पड़े मैं आने जाने वालों को देख रहा था। 'आने जाने वाले' यों भी अध्ययन की श्रेष्ठ सामग्री होते हैं, ऐसे आतंक के समय में तो और भी अधिक। तभी देखा, मेरे पड़ोस ही एक सिख सरदार साहब, अपने साथ तीन चार और सिखों को लिये हुए घर की तरफ जा रहे हैं। ये अन्य सिख मैंने पहले उधर नहीं देखे थे—कौतूहल स्वाभाविक था, और फिर आज अपने पड़ोसी को लम्बी किरपान लगाये देखकर तो और भी अचंभा हुआ। सरदार बिशनसिंह सिख तो थे, पर बड़े सकोची, शांतिप्रिय और उदार विचारों के, प्रतीक रूप से किरपान रखते रहे हों तो रहे हों, मैंने देखी नहीं थी और ऐसे उद्धत ढंग से कोट के ऊपर कमरबंद के साथ लटकायी हुई तो कभी नहीं।

मैंने कुछ पंजाबी लहजा बनाकर कहा, "सरदारजी, अज्ज किदर फौजाँ चल्लियाँ ने ?"

बिशनसिंह ने व्यस्त आँखों से मेरी ओर देखा। मानों कह रही हों, 'मैं जानता हूँ कि तुम्हारे लहजे पर मुस्कराकर तुम्हारा विनोद स्वीकार करना चाहिए, पर देखते तो हो, मैं फँसा हूँ' स्वयं उन्होंने कहा, "फेर हाजिर होवाँगा—"

टोली आगे बढ़ गयी।

जो लोग आराम कुर्सियों पर बैठकर आने जाने वालों को देखा करते हैं, उन्हें एक तो देखने को बहुत कुछ मिलता है, दूसरे जो कुछ वह देखते हैं उसके साथ उनका रागात्मक लगाव तो जरा भी होता नहीं कि वह मन में जम जाय। मैं भी सरदार बिशनसिंह को भूल सा गया था जब रात को वह मेरे यहाँ आये। लेकिन अचंभे को दबाकर मैंने कुर्सी दी और कहा, "आओ बैठो, बड़ी किरपा कीती !"

वे बैठ गये। थोड़ी देर चुप रहे। फिर बोले, "अज जी बड़ा दुखी हो गया ए।"

मैंने पंजाबी छोड़कर गंभीर होकर कहा, "क्या बात है सरदारजी ? खैर तो है।"

"सब खैर ही खैर है इस अभागे मुल्क में, भाई साहब, और क्या कहूँ। मैं तो कहता हूँ, दंगा और खून खराबा न हो तो कैसे न हो, जब कि हम रोज नयी जगह उसकी जड़ें खोद आते हैं, फिर उन्हें सींचते हैं मुझे तो अचंभा होता है, हमारी कौम बची कैसे रही अब तक !"

उनकी वाणी में दर्द था। मैंने समझा कि वे भूमिका में उसे बहा न लेंगे तो बात न कह पायेंगे, इसलिए चुप सुनता रहा। वे कहते गये, "सारे मुसलमान अरब और

'अज्ञेय'

रमते तत्र देवताः

अक्टूबर सन् १६४६ का कलकत्ता। तब हम लोग दंगों के आदी हो गये थे, अखबार में इक्के दुक्के खून और लूट-पाट की घटनाएँ पढ़कर तब नहीं सिहरता था, इतने से यह भी नहीं लगता था कि शहर की शांति भंग हो गयी। शहर बहुत से छोटे-छोटे हिंदुस्तान पाकिस्तानों में बँट गया था, जिनकी सीमाओं की रक्षा पहरेदार नहीं करते थे, लेकिन जो फिर भी परस्पर अनुल्लंघ्य हो गये थे। लोग इस बँटी हुई जीवन प्रणाली को लेकर भी अपने दिन काट रहे थे, मान बैठे थे कि जैसे जुकाम होने पर एक नासिका बंद हो जाती है तो दूसरी से श्वास लिया जाता है—तनिक कष्ट होता है तो क्या हुआ, कोई मर थोड़े ही जाता है?—वैसे ही श्वास की तरह नागरिक जीवन भी बँट गया तो क्या हुआ एक नासिका ही नहीं, एक फेफड़ा भी बंद हो जा सकता है और उसकी सड़न का विष सारे शरीर में फैलता है और दूसरे फेफड़े को भी आक्रांत कर लेता है, इतनी दूर तक रूपक को घसीट ले जाने की क्या जरूरत?

बीच बीच में इस या उस मुहल्ले में विस्फोट हो जाता था। तब थोड़ी देर के लिए उस या आसपास के मुहल्लों में जीवन स्थगित हो जाता था, व्यवस्था पटकी खा जाती थी और आतंक उसकी छाती पर चढ़ बैठता था। कभी दो एक दिन के लिए भी गड़बड़ रहती थी, तब बात कानोंकान फैल जाती थी कि 'ओ पाड़ा भालो ना' और दूसरे मुहल्लों के लोग दो-चार दिन के लिए उधर आना जाना छोड़ देते थे। उसके बाद ढर्रा फिर उभर आता था और गाड़ी चल पड़ती थी

हठात् एक दिन कई मुहल्लों पर आतंक छा गया। ये वैसे मुहल्ले थे जिनमें हिंदुस्तान पाकिस्तान की सीमाएँ नहीं बाँधी जा सकती थीं क्योंकि प्याज की परतों की तरह एक के अंदर एक जमा हुआ था। इनमें यह होता था कि जब कहीं आसपास कोई गड़बड़ हो, या गड़बड़ की अफवाह हो, तो उसका उद्भव या कारण चाहे हिंदू सुना जाय चाहे मुसलमान, सब लोग अपने अपने किवाड़ बंद करके जहाँ के तहाँ रह जाते, बाहर गये हुए शाम को घर न लौटकर बाहर ही कहीं रात काट देते, और दूसरे तीसरे दिन तक घर के लोग यह न जान पाते कि गया हुआ व्यक्ति इच्छापूर्वक कहीं रह गया है या कहीं रास्ते में मारा गया है

है, यो भी ऐसे वक्त में अकेली जाना—और फिर बगालिन का—ठीक नहीं, पूछकर पहुँचा दूँ। मैने पूछा, 'माँ तुम कहाँ जाओगी?' पहले तो वह और सहमी, फिर देखकर कि मैं मुसलमान नहीं सिख हूँ, जरा सँभली। मालूम हुआ कि उत्तरी कलकत्ते से उसका खाविंद और वह दोनो धरमतल्ले आये थे, तय हुआ था कि दोनों अलग अलग सामान खरीद कर के० सी० दास की दुकान पर नियत समय पर मिल जायेंगे और फिर घर आयेंगे। इसी बीच गडबड हो गयी, वह सन्नाटे से डरकर घर भागी जा रही है—दास की दुकान पर नहीं गयी, रास्ते मे चाँदनी पडती है जो उसने सदा सुना है कि मुसलमानो का गढ है।

"मैंने उससे कहा कि डरे नहीं, मेरे साथ धरमतल्ला पार कर ले, अगर के० सी० दास की दुकान पर उसका आदमी मिल गया तो ठीक, नहीं तो वहाँ से बालीगज की ट्राम तो चलती होगी, उसमे जाकर गुरुद्वारे म रात रह जायगी और सवेरे म उसे घर पहुँचा आऊँगा। दिन छिप चला था, बिजली सडकों पर वैसे ही नहीं है, ऐसे में पाँच छ मील पैदल दगे का इलाका पार करना ठीक नहीं है।" इतना कहकर सरदार निशान सिंह क्षण भर रुके, और मेरी ओर देखकर बोले, "बताइये, मैंने ठीक कहा कि गलत? और मैं क्या कर सकता था?"

"ठीक ही तो कहा, और रास्ता ही क्या था?"

"मगर ठीक नहीं कहा। बाद म पता लगा कि मुझे उसे अकेली भटकने देना चाहिए था।"

"क्यो?" मैने अचकचाकर पूछा।

"सुनिये।" सरदार ने एक लबी साँस ली। "के० सी० दास की दुकान बद थी। पति देवता का कोई निशान नहीं था। मैं उस औरत को ट्राम में बिठाकर यहाँ ले आया। रात वह गुरुद्वारे के ऊपरवाले कमरे में रही। मैं तो अकेला हूँ आप जानते हैं, मेरी बहिन ने उसे वहीं ले जाकर खाना खिलाया और बिस्तरा वगैरा दे आयी। सवेरे मैंने एक सिख ड्राइवर से बात करके टैक्सी की, और ढूँढता हुआ उसे उसके घर ले गया। शामपुकुर लेन मे था—एकदम उत्तर मे। दरवाजा बद था, हमने खटखटाया तो एक सुस्त से महाशय बाहर निकले—पति देवता।"

"आप लोगों को देखते ही उछल पड़े होंगे?"

सरदार क्षण भर चुप रहे।

"हाँ, उछल तो पडे। लेकिन बहू को देखकर नहीं, मुझे देखकर।" उन्होंने फिर एक लबी साँस ली। "महाशय के० सी० दास पर नहीं ठहरे थे, दगे की खबर हुई तो कहीं एक दोस्त के यहाँ चले गये थे। रात वहीं रहे थे, हमसे कुछ पहले ही लौटकर आये थे। आँखें भारी थीं। दरवाजा खोलकर मुझे देखकर चौंके, फिर मेरे पीछे स्त्री को देख

पारस और तातार से नहीं आये थे। सौ में एक होगा जिसको हम आज अरब या पारस या तातार की नस्ल का कह सकें। और मेरा तो ख्याल है—ख्याल नहीं तजरुबा है, कि अरब या ईरानी बड़ा नेक, मिलनसार और अमनपसद होता है। तातारियों से वास्ता नहीं पड़ा। बाकी सारे मुसलमान कौन हैं? हमारे भाई, हमारे मजलूम, जिनका मुँह हम हजारों बरसों से मिट्टी में रगड़ते आये हैं! वही आज वही मुँह उठाकर हम पर थूकते हैं, तो हमें बुरा लगता है। पर वे मुसलमान हैं। इसलिए हम खिसियाकर अपने और भाइयों को पकड़कर उनका मुँह मिट्टी में रगड़ते हैं! और भाइयों की ही क्या, बहिनों को पैरों के नीचे रौंदते हैं, और चूँ नहीं करने देते क्योंकि चूँ करने से धरम नहीं रहता—"

आवेश में सरदार की जबान लड़खड़ाने लगी थी। वे क्षणभर चुप हो गये। फिर बोले, "बाबू साहब, आप सोचते होंगे, यह सिख होकर मुसलमानों का पच्छ करता है। ठीक है, उनसे किसी का वैर हो सकता है तो हमारा ही। पर आप सोचिये तो, मुसलमान हैं कौन? मजलूम हिंदू ही तो मुसलमान हैं। हमने जिससे हिकारत की, वह हमसे नफरत करे तो क्या बुरा करता है—हमारा कर्ज ही तो अदा करता है न! मैं तो यह भी कहता हूँ कि यह ठीक न भी हो, तो भी हम नुक्स निकालनेवाले कौन होते हैं? इनसान को पहले अपना ऐब देखना चाहिए, तभी वह दूसरे को कुछ कहने लायक बनता है। आप नहीं मानते?"

मैंने कहा, "ठीक कहते हैं आप। लेकिन इनसान आखिर इनसान है, देवता नहीं।"

उन्होंने उत्तेजित स्वर में कहा, "देवता? आप कहते हैं देवता? काश कि वह इनसान भी हो सकता! बल्कि वह खरा हैवान भी होता तो भी कुछ बात थी—हैवान भी अपने नियम कायदे से चलता है! लेकिन बहस करने नहीं आया, आप आज की बात ही सुन लीजिए।"

मैंने कहा, "आप कहिये। मैं सुन रहा हूँ।"

"आप जानते हैं कि मेरे घर के पास गुरुद्वारा है। वहाँ जब तब कुछ लोगों ने पनाह पायी है, और जब तब मैंने भी वहाँ पहरा दिया है। यह कोई तारीफ की बात नहीं, गुरुद्वारे की सेवा का भी एक दर्जा है, पनाह देने की भी रीत चली आयी है, इसीलिए यह हो गया है। हम लोगों ने इनसानियत की कोई नयी ईजाद नहीं की। खैर। कल मैं श्यामबाजार से वापस आ रहा था तो देखा, रास्ते में अचानक मिनटों में सन्नाटा छाता जा रहा है। दो एक ने मुझे भी पुकारकर कहा, 'घर जाओ, दंगा हो गया है,' पर यह न बता पाये कि कहाँ। ट्राम तो बंद थी ही।

"धरमतल्ले के पास मैंने देखा एक औरत अकेली घबड़ाई हुई आगे दौड़ती चली जा रही है, एक हाथ में एक छोटा बंडल है, दूसरे में जोर से एक छोटा मनीबेग दाबे है। रो रही है। देखने से भद्रलोक की थी। मैंने सोचा, भटक गयी है और डरी हुई

कम कोई क्या बाँधेगा? सिर्फ़ जिठानी का मुँह अपनी कुत्सा-ग्लानि को छिपाने का साधन बन जाता है, और क्या! ख़ैर। हम लोग औरत को लेकर गये। हम देखते ही पहले तो और भी कई लोग जुट गये, पर हमें को देखकर शायद पति देवता को अक्ल आ गयी, उन्होंने हमसे कहा, 'अच्छा ठीक है, आप लोगों की मेहरबानी', और औरत से कहा, 'चल, भीतर चल' और बस। हमें आने या बैठने को नहीं कहा—हम बैठते भी क्या उस कमीने के घर में—"

"औरत भीतर चली गयी? कुछ बोली नहीं?"

"बोलती क्या? जब से होश आया तब से बोली नहीं थी। उसकी आँखें न जाने कैसी हो गयी थीं, उनमें झाँककर भी कोई जैसे कुछ नहीं देखता था, सिर्फ़ एक दीवार। मुझसे तो उनके पास नहीं ठहरा जाता था। वह चुपचाप खड़ी रही। जब हम लोगों ने कहा, 'जाओ माँ, घर में जाओ अब—' तब जैसे मशीन-सी दो-तीन क़दम आगे गयी। पति के फैलते सिकुड़ते नथनों की ओर उसने नहीं देखा, पर हर क़दम पर जैसे और झुकती और छोटी होती जाती थी। देहरी तक ही गयी, फिर वहाँ लड़खड़ाकर बैठ गयी। मैं तो समझा था गिर गिरी, पर बैठते बैठते उसका सिर चौखटे से टकराया तो चोट से वह सँभल गयी। बैठ गयी। उसे वैसे ही छोड़कर हम लोग चले आये।"

हम दोनों देर तक चुप रहे।

थोड़ी देर बाद सरदार किशनसिंह ने कहा, "बोलिये कुछ, बाबू साहब?"

मैंने कहा, "चलिये, बात ख़तम हो गयी जैसे तैसे। उन्होंने उसे घर में ले लिया—"

किशनसिंह ने तीखी दृष्टि से मेरी तरफ़ देखा। "आप सच-सच कह रहे हैं बाबू साहब?"

मैंने चौंककर कहा, "क्यों? झूठ क्या है?"

"आप सचमुच मानते हैं कि बात ख़तम हो गयी?"

मैंने कुछ रुककर कहा, "हाँ, वैसा तो नहीं मान पाता। यानी हमारे लिए भले ही ख़त्म हो गयी हो, उनके लिए तो नहीं हुई।"

"हमारे लिए भी क्यों हुई है? पर उसे अभी छोड़िये, बताइये कि उस औरत का क्या होगा?"

मैंने अपने शब्द तौलते हुए कहा "बंगाल में आये दिन अख़बारों में पढ़ने को मिलता है कि स्त्री ने सास या ननद या पति के अत्याचार से दुखी होकर आत्महत्या कर ली, ज़हर खा ली या कुएँ में कूद पड़ी। और—कभी-कभी ऐसे एक्सीडेंट भी होते हैं कि स्त्री के कपड़े में आग लग गयी, चाहे यों ही, चाहे मिट्टी के तेल के साथ—"

"हाँ, हो सकता है। आप माफ़ करना, मैं कड़वी बात कहनेवाला हूँ। इससे अगर आपको कुछ तसल्ली हो तो कहूँ कि अपने को हिन्दू मानकर ही यह कह रहा हूँ। आप

कर तनिक ठिठके और खड़े खड़े बोले, 'आप कौन ?' मैंने कहा, 'पहले इन्हें भीतर ले जाइये, फिर मैं सब बतलाता हूँ।' स्त्री पहले ही सकुची झुकी खड़ी थी, इस बात पर उसने घूँघट जरा आगे सरकाकर अपने को और भी समेट-सा लिया।"

बिशनसिंह फिर जरा चुप रहे, मैं भी चुप रहा।

"पति ने फिर पूछा, 'ये रात आपके यहाँ रहीं ?' मैंने कहा, 'हाँ, हमारे गुरुद्वारे में रहीं। शाम को यहाँ आना मुमकिन नहीं था।' उन्होंने फिर कहा, 'आपके बीवी बच्चे हैं ?' मैंने कहा, 'नहीं, मेरी विधवा बहिन साथ रहती है, पर इससे आपको क्या ?'

"उन्होंने मुझे जवाब नहीं दिया। वहीं से स्त्री की ओर उन्मुख होकर बंगाली में पूछा, 'तुम रात को क्या जाने कहाँ रही हो, सवेरे तुम्हें यहाँ आते शरम न आयी ?'" सरदार बिशनसिंह ने रुककर मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "नीच !"

बिशनसिंह के चेहरे पर दर्दभरी मुस्कान झलककर खो गयी। बोले, "मैं न जाने क्या करता उस आदमी को—और सोचता हूँ कि स्त्री भी न जाने क्या जवाब देती। लेकिन औरत जात का जवाब न देना भी कितना बड़ा जवाब होता है, इसको आजकल का कीड़ा इनसान क्या समझता है ? मैंने पीछे धमाका सुनकर मुड़कर देखा, वह औरत गिर गयी थी—बेहोश होकर। मैं फौरन उठाने को झुका, पर उस आदमी ने ऐसा तमाचा मारा था कि मेरे हाथ ठिठक गये। मैंने उसी से कहा, उठाओ, पानी का छींटा दो—' पर वह सक्का नहीं, फिर उसकी दबर दबर आँखें छोटी होकर लकीरें सी बन गयीं, और एकाएक उसने दरवाजा बंद कर दिया।"

मैं स्तब्ध सुनता रहा। कुछ कहने को न मिला।

"लोग इकट्ठे होने लगे थे। मैं उस स्त्री की बात सोचकर ज्यादा भीड़ करना भी नहीं चाहता था। ड्राइवर की मदद से मैंने उसे टैक्सी में रखा और घर ले आया। बहिन को उसकी देखभाल करने को कहके बाबा बचित्तरसिंह के पास गया—वह हमारे बुजुर्ग हैं और गुरुद्वारे के ट्रस्टी। वहीं हम लोगों ने मीटिंग करके सलाह की कि क्या किया जाय। कुछ की तो राय थी कि उस आदमी को कत्ल कर देना चाहिए पर उससे उसकी विधवा का मसला तो हल न होता। फिर यही सोचा गया कि पाँच सरदारों का जत्था गुरुद्वारे की तरफ से उस औरत को उसके घर लेकर जाय, और उसके आदमी से कहे कि या तो इसको अपनाकर घर में रखो या हम समझेंगे कि तुमने गुरुद्वारे की बेइज्जती की है और तुम्हें काट डालेंगे।"

"आप शायद कल तीसरे पहर वहीं से लौट रहे होंगे—"

"हाँ। नहीं तो आप जानते हैं मैं वैसे किरपान नहीं बाँधता। एक जमाने में जिन वजूहात से गुरुओं ने किरपान बाँधना धर्म बताया था, आज उनके लिए राइफल से

राजशेखर वसु

गामानवों की कथा

जिस समय की बात कहता हूँ, उससे प्राय तीन बरस पहले मानवजाति पृथ्वी पर से लुप्त हो गयी थी। प्रश्न उठ सकता है कि हम सभी जब पञ्चत्व प्राप्त हो गये तब यह कथा लिखी किसने, या कि पढ़ी ही किसने? किंतु सदेह करने का कोई कारण नहीं है—लेखक और पाठक तो देश काल से परे, त्रिलोकदर्शी और त्रिकालज्ञ होते हैं। अब जो हुआ सो सुनिये।

बड़े बड़े राष्ट्रों के प्रभुओं के बीच मनोमालिन्य अनेक दिन से चल रहा था। क्रमश बढ़ते बढ़ते वह ऐसी अवस्था तक पहुँच गया कि उसके मिटने की आशा नहीं रही। सब अपनी अपनी भाषा में द्विजेंद्रलाल का यह गान राष्ट्रगीत की भाँति गाने लगे "हम ईरान देश के काजी, जो बेटा इनकार करे वह निश्चय पूरा पाजी!" अत में जब नेता गण अपने अपने पक्ष के ज्ञानी गुणियों से मत्रणा करके इस परिणाम पर पहुँच गये कि बज्जात विपक्षी को बिलकुल निर्मूल किये बिना जीवन व्यर्थ है, तब उन्होंने परस्पर एक दूसरे पर निट्रिलियम बम फेंकना आरभ किया। विज्ञान की इस नूतन ईजाद के सामने पहले का यूरेनियम (एटम) बम रुई भरे तकिये के समान था।

प्रत्येक राष्ट्र के बम विशारदों ने आशा की थी कि अन्य राष्ट्रों की तय्यारी पूरी होने से पहले ही वे उनका काम तमाम कर दे सकेंगे। किंतु दुर्भाग्यवश सभी का आयोजन हो चुका था, और प्रत्येक ने जासूसों के द्वारा एक दूसरे का भेद पाकर एक ही दिन एक ही शुभ लग्न म ब्रह्मास्त्र छोड़ा था।

सभ्य, अर्धसभ्य, असभ्य, कोई देश नहीं बचा। समग्र मानवजाति, उसकी समस्त कीर्ति, पशु पक्षी, कीट पतग, पेड़-पत्ते, सब क्षण भर म ध्वस्त हो गये। किंतु प्राण बड़ा कठिन पदार्थ है, उसकी जड़ सहज नहीं मिटती। सागर तल में, पर्वत-कदराओं में, जन हीन द्वीपों में और अन्य कुछ दुष्प्रवेश्य स्थानों मे कुछ उद्भिज और इतर प्राणी बचे रह गये। उनका विस्तारित विवरण देने की यहाँ जरूरत नहीं, जिनका यह इतिहास है उन्हीं की कथा कहता हूँ।

लदन, पैरिस, न्यूयार्क, पीकिंग, कलकत्ता प्रभृति बड़े बड़े शहरों मे सड़क के नीचे जो गहरे परनाले थे उनमे लाखों चूहे रहते थे। उनमे अधिकाश तो बड़े बमों के प्रताप

हिंदू हैं न, इसलिए यही सोचते हैं। वह मर जायगी, छुटकारा हो जायगा। हिंदू धर्म उदार है न, मारता नहीं, मरने का सब तरह से सुभीता कर देता है। इसमें दो फायदे हैं—एक तो कभी चूक नहीं होती, दूसरे यह तरीका दया का भी है। लेकिन यह बताइये, अगर आदमी पशु है तो औरत क्यों देवता हो? देवता मैं जान बूझकर कहता हूँ, क्योंकि इनसान का इनसाफ तो देवतों से भी ऊँचा उठ सकता है। देवता सूद न लें, धेले पाई की वसूली पूरी करते हैं।—करते हैं कि नहीं?"

मैंने कहा, "सरदार साहब, आपको सदमा पहुँचा है इसीलिए आप इतनी कड़वी बात कह रहे हैं। मैं उस आदमी को अच्छा नहीं कहता, पर एक आदमी की बात को आप हिंदू जाति पर क्यों थोपते हैं?"

"क्या यह सचमुच एक आदमी की बात है? सुनिये, मैं जब सोचता हूँ कि क्या हो तो उस आदमी के साथ इनसाफ हो, तब यही देखता हूँ कि वह औरत घर से दुत कारी जाकर मुसलमान हो मुसलमान बने, ऐसे मुसलमान जो एक एक सौ सौ हिंदुओं को मारने की कसम खाये। और आप तो साइकालोजी पढ़े हैं न, आप समझेंगे—हिंदू औरतों के साथ सचमुच वही करे जिसकी झूठी तोहमत उसकी माँ पर लगायी गयी! देवताओं का इनसाफ तो हमेशा से यही चला आया है—नफरत के एक-एक बीज से हमेशा सौ-सौ जहरीले पौधे उगे हैं। नहीं तो यह जंगल यहाँ उगा कैसे, जिसमें आज हम-आप खो गये हैं और क्या जाने कभी निकलेंगे कि नहीं? हम रोज दिन में कई बार नफरत का नया बीज बोते हैं और जब पौधा फलता है तो चीखते हैं कि धरती ने हमारे साथ धोखा किया!"

मैं काफी देर तक चुप रहा। सरदार निशानसिंह की बात चमड़ी के नीचे ककड़-सी रड़कने लगी। वातावरण बोझीला हो गया। मैंने उसे कुछ हल्का करने के लिए कहा, "सिख काम की शिवेलरी मशहूर है। देखता हूँ, उस बिचारी का दुःख आपकी शिवे लरी को छू गया है!"

उन्होंने उठते हुए कहा, "मेरी शिवेलरी!" और थोड़ी देर बाद फिर ऐसे स्वर में जिसमें एक अजीब गूँज थी, "मेरी शिवेलरी, भाई साहब!"

उन्होंने मुँह फेर लिया, लेकिन मैंने देखा, उनके ओठों की कोर काँप रही है—हल्की-सी लेकिन बड़ी बेबसी के साथ

शांतिपूर्वक नहीं रह सकते? हमारी वर्तमान सभ्यता की तुलना नहीं हो सकती, हमने विश्व के रहस्यों का उद्घाटन किया है, प्रचण्ड प्राकृतिक शक्तियों को बाँधकर काम में लगाया है, शारीरिक और सामाजिक नाना व्याधियों का उच्छेद किया है, दर्शन और नीतिशास्त्र का अगाध ज्ञान प्राप्त किया है। हमारे राष्ट्रनेता और महा महा ज्ञानीगण अगर मिलकर यत्न करें तो विभिन्न जातियों की स्वार्थ बुद्धि का समन्वय अवश्य हो सकेगा।

जन हितैषी पंडितों की देख रेख में राष्ट्रपतियों ने एक महती विश्व सभा को आमंत्रित किया। विभिन्न देशों से बड़े बड़े राजनीतिक, दार्शनिक, विज्ञानी प्रभृति बड़े उत्साह के साथ उस सभा में उपस्थित हुए। धूम धाम के कारण बहुत-से तमाशाई भी आ जुटे। जितनी वक्तृताएँ हुईं, उनके असल नाम गामानवी भाषा में लिखने से पाठकों को असुविधा हो सकती है, इसलिए कृत्रिम नाम देता हूँ जो सुनने में भी बुरे न लगें और जिनका उच्चारण भी अनायास हो सके।

हमारे देश में सब प्रकार की सभाओं में कार्यारंभ से पहले संगीत का और कार्यावली के बीच बीच कुमारी अमुक अमुक के नृत्य का दस्तूर है। पराक्रमी गामानवों में रसबोध कम है, उनका मत है कि पहले सोलह आने काम, पीछे मनोरंजन। उनका जीवनकाल भी कम है, इसलिए वक्तृताएँ संक्षेप में और जल्दी से समाप्त हो जाती हैं। आरंभ में ही सभापति मनस्वी श्री चङ्लिङ् ने सबको सूचना दी कि इस सभा में जैसे भी हो विश्वशांति की व्यवस्था करनी ही होगी, अन्यथा गामानव जाति का निस्तार नहीं।

सभापति के अभिभाषण के उपरांत एक अनतिसमृद्ध राष्ट्र के प्रतिनिधि काउंट ऑटिनफ बोले, जगत् की संपत्ति का विभाजन बिल्कुल भी न्यायसम्मत तरीके पर नहीं हुआ है, इसीलिए विश्वशांति नहीं होती। दो चार राष्ट्रों ने असत् उपायों से बड़े बड़े साम्राज्य बनाकर प्रभूत कच्चा माल और आज्ञाकारी निस्तेज प्रजा पा ली है, उपनिवेश भी स्थापित किये हैं। किंतु हम वंचित हुए हैं, हमें बटने नहीं दिया जाता। युद्ध निवारण करना हो तो विश्व संपत्ति का बराबर भाग हमें भी मिलना चाहिए।

सबसे बड़े साम्राज्य के प्रतिनिधि लार्ड ग्रैबर्थ ने कहा, जगत् में शांतिरक्षा के लिए ही यह आवश्यक है कि हमारे पास विशाल साम्राज्य रहे, साम्राज्य चलाने की जितनी योग्यता हममें है उतनी और किसी में नहीं। हमारे शक्तिमान होने से आप सब निरापद रह सकेंगे। जहाँ तक कच्चे माल का प्रश्न है हम उपयुक्त शर्तों पर कुछ माल दे सकते हैं। हमारे संरक्षण में जो असभ्य अथवा अर्धसभ्य जातियाँ रहती हैं उनका लालच न करें। हम तो उन देशवासियों के केवल संरक्षक हैं, उनके योग्य होते ही देश उन्हें सौंप कर भारमुक्त होंगे। हम किसी का अनिष्ट नहीं करते, यदि विपद आये तो हमारे बंधु कीरॉफ का विशाल देश ही उसका दायी होगा। इनके देश में स्वाधीन उद्योग व्यापार नहीं है, सब कुछ राष्ट्र के अधीन है। समाज का मस्तक स्वरूप जो अभिजात

से नष्ट हो गये, किन्तु कुछ बड़े बड़े चूहे-चुहिया बचे रह गये। वे केवल बचे ही नहीं रहे, वरन् बमों से निकली हुई गामा-रश्मियों के प्रभाव से उनके जातिगत लक्षणों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया—जिसे जीव विज्ञानी 'म्यूटेशन' कहते हैं। कुछ ही पीढ़ियों में उनके बाल और पूँछ झड़ गयी, अगले पैर हाथों-से हो गये और पिछले पैर ऐसे मजबूत हो गये कि वे सीधे खड़े होना और चलना सीख गये। मस्तिष्क बड़ा हुआ, कंठ से तीखी किचकिच ध्वनि के बदले स्पष्ट भाषा फूट निकली। संक्षेप में मानवों के सब लक्षण उनमें प्रकट हो गये। कर्ण जैसे सूर्य के वर से सहजात कवच कुंडल लेकर ही जन्मे थे, वैसे ही गामा रश्मियों के प्रभाव से ये भी सहजात प्रखर बुद्धि एवं त्वरित उन्नति की संभावना लेकर धरातल पर आविर्भूत हुए। एक विषय में चूहा जाति पहले से ही मानवों से श्रेष्ठ थी—उनमें वंशवृद्धि बड़ी द्रुत होती थी। अब यह शक्ति और भी बढ़ गयी।

इन नये लांगूल विहीन द्विपदचारी प्रतिभाशाली प्राणियों को चूहा कहकर अपमान करना नहीं चाहता। इन्हें मानव गिनना ही उचित जान पड़ता है। तथापि हम जैसे प्राचीन मानव से प्रभेद करने के लिये गामा रश्मि के इन वरपुत्रों को गामानव कहूँगा।

यहाँ पर जरा जटिल तत्व की बात कहनी होगी। जो लोग इतिहास की गवेषणा करते हैं, वे वंश परंपरा का हिसाब लगाते समय यह मानकर चलते हैं कि मोटे तौर पर मानव की एक पीढ़ी पच्चीस वर्ष की होती है। अतएव अठारह हजार वर्ष को हम ७२० पीढ़ी कह सकते हैं। हम से ऊपर की एक सौ इक्कीसवीं पीढ़ी कैसी थी? नृतत्व के विशारद कहते हैं कि वे प्राचीन प्रस्तर युग के मानव थे जो खेती करना नहीं जानते थे, कपड़ा नहीं पहनते थे, राँधते नहीं थे, कच्चा मांस खाते थे और गुफावासी थे। विचार कर देखिये, केवल १२० पीढ़ी में हमारी कैसी आश्चर्यकारी उन्नति हुई! हमारी जैसे पच्चीस वर्षों की एक पीढ़ी, चूहों से उद्भूत गामानवों की वैसे ही पंद्रह दिन की एक पीढ़ी हुई क्योंकि चूहे जन्मांतर पंद्रहवें दिन से वंशवृद्धि करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। मानवजाति के ध्वंस के बाद जो तीस वर्ष बीते उस अवधि में गामानवों की १२० पीढ़ियाँ हो गयीं। अर्थात् गामानवों के तीस वर्ष हमारे १८,००० वर्षों के समान हुए। विश्वास न हो तो गणित लगाकर देख सकते हैं।

इन सुदीर्घ तीस वर्षों में गामानव अत्यंत द्रुत गति से सभ्यता के शिखर पर जा उपस्थित हुआ। पूर्वमानव जिस विद्या, कला और ऐश्वर्य का अहंकार करता वह सब गामानव ने प्राप्त कर लिया। अवश्य ही उनकी सब शाखाएँ समान रूप से सभ्य और विकसित नहीं हुईं, उनमें भी जाति भेद, राजनीतिक भेद, छोटे-बड़े राष्ट्र, साम्राज्य, पराधीन प्रजा, द्वेष हिंसा और वाणिज्यिक प्रतियोगिता प्रकट हुए, युद्ध विग्रह आदि घटित होते रहे। बार-बार मारात्मक संघर्षों के उपरांत विभिन्न देशों के दूरदर्शी गामानवों को सुबुद्धि प्राप्त हुई। झगड़े की क्या आवश्यकता है, हम सब क्या एकमत होकर

शांतिपूर्वक नहीं रह सकते? हमारी वर्तमान सभ्यता की तुलना नहीं हो सकती, हमने विश्व के रहस्यों का उद्घाटन किया है, प्रचंड प्राकृतिक शक्तियों को बाँधकर काम में लगाया है, शारीरिक और सामाजिक नाना व्याधियों का उच्छेद किया है, दर्शन और नीतिशास्त्र का अगाध ज्ञान प्राप्त किया है। हमारे राष्ट्रनेता और महा महा ज्ञानीगण अगर मिलकर यत्न करें तो विभिन्न जातियों की स्वार्थ बुद्धि का समन्वय अवश्य हो सकेगा।

जन हितैषी पंडितों की देख रेख में राष्ट्रपतियों ने एक महती विश्व सभा को आमंत्रित किया। विभिन्न देशों से बड़े बड़े राजनीतिक, दार्शनिक, विज्ञानी प्रभृति बड़े उत्साह के साथ उस सभा में उपस्थित हुए। धूम धाम के कारण बहुत से तमाशाई भी आ जुटे। जिनकी वक्तृताएँ हुई, उनके असल नाम गामानवी भाषा में लिखने से पाठकों को असुविधा हो सकती है, इसलिए कृत्रिम नाम देता हूँ जो सुनने में भी बुरे न लगें और जिनका उच्चारण भी अनायास हो सके।

हमारे देश में सब प्रकार की सभाओं में कार्यारम्भ से पहले संगीत का और कार्यावली के बीच बीच कुमारी अमुक अमुक के नृत्य का दस्तूर है। परन्तु गामानवों में स्नायो न कम है, उनका मत है कि पहले भोजन बाने काम, पीछे मनोरंजन। उनका जीवनकाल भी कम है, इसलिए वक्तृतादि संक्षेप में और जल्दी से समाप्त हो जाती है। आरम्भ में ही सभापति मनस्वी श्री चङ्लिङ् ने सबको सूचना दी कि इस सभा में जैसे भी हो विश्वशांति की व्यवस्था करनी ही होगी, अन्यथा गामानव जाति का निस्तार नहीं।

सभापति के अभिभाषण के उपरांत एक अनतिसमृद्ध राष्ट्र के प्रतिनिधि काउंट नॉटिनफ बोले, जगत् की संपत्ति का विभाजन बिल्कुल भी न्यायसम्मत तरीके पर नहीं हुआ है, इसीलिए विश्वशांति नहीं होती। दो चार राष्ट्रों ने असत् उपायों से बड़े-बड़े साम्राज्य बनाकर प्रभूत कच्चा माल और आज्ञाकारी निस्तेज प्रजा पा ली है, उपनिवेश भी स्थापित किये हैं। किंतु हम वंचित हुए हैं, हम बढ़ने नहीं दिया जाता। युद्ध निवारण करना हो तो विश्व संपत्ति का बराबर भाग हम भी मिलना चाहिए।

सबसे बड़े साम्राज्य के प्रतिनिधि लार्ड ग्रैबर्थ ने कहा, जगत् में शांतिरक्षा के लिए ही यह आवश्यक है कि हमारे पास विशाल साम्राज्य रहे, साम्राज्य चलाने की जितनी योग्यता हममें है उतनी और किसी में नहीं। हमारे शक्तिमान होने से आप सब निरापद रह सकेंगे। जहाँ तक कच्चे माल का प्रश्न है, हम उपयुक्त शर्तों पर कुछ माल दे सकते हैं। हमारे संरक्षण में जो असभ्य अथवा अर्धसभ्य जातियाँ रहती हैं, उनका लालच न करें। हम तो उन देशवासियों के केवल संरक्षक हैं, उनके योग्य होते ही देश उन्हें सौंप कर भारमुक्त होंगे। हम किसी का अनिष्ट नहीं करते, यदि विपद आये तो हमारे बंधु कीर्राफ का विशाल देश भी उसका दायी होगा। इनके देश में स्वाधीन उद्योग व्यापार नहीं हैं, सब कुछ राष्ट्र के अधीन है। समाज का मस्तक स्वरूप जो अभिजात

और धनिक श्रेणियाँ होती हैं वे यहाँ हैं ही नहीं। इनके कुदृष्टांत से हमारे श्रमजीवी बिगड़े जा रहे हैं। कुछ दिन बाद ही आप लोग देखेंगे, इनकी दुर्नीति और सस्ता माल सारे जगत् को छा लेगा, और हम सबके समाज, धर्म और व्यवसाय का सर्वनाश हो जायगा। यदि शांति चाहते हैं तो पहले इनको ठीक कीजिये।

जनरल कीर्पॉफ अपनी मोटी मोटी मूँछें मरोड़ते हुए बोले, मधुवर लार्ड ग्रैनर्थ बिल्कुल झूठ बोल रहे हैं यह आप सब समझते हैं। उनका राष्ट्र ही हम सब को दबाये हुए है, और कई बार घूस दे-देकर हमारे देश में विप्लव कराने की चेष्टा कर चुका है। इसका प्रतिशोध कभी किया ही जायगा, अभी अधिक कुछ कहना नहीं चाहता।

पराधीन देश के जन-नेता अबलदासजी ने कहा, लार्ड ग्रैनर्थ ने जो सरक्षकत्व की दुहाई दी है वह निरा ढकोसला है। हम लायक हैं कि नालायक इसका विचार करनेवाले अगर वही रहेंगे तब तो कभी भी हमारा दासत्व दूर न होगा। इस सभा का एक मात्र कर्त्तव्य है साम्राज्य मात्र को मिटाकर सब जातियों की स्वाधीनता की प्रतिष्ठा। देशों की पराधीनता ही द्वेष और हिंसा की जड़ है।

महातपस्वी निश्चिंत महाराज आँखें बंद किये बैठे थे। अब मौन भंग करके अबलदास की पीठ पर सस्नेह हाथ फेरते हुए बोले, कोई चिंता नहीं वत्स, मैं तो हूँ। मेरी तपस्या के प्रभाव से तुम सब को यथासमय श्रेयलाभ होगा। गौरीशंकर शिखरवासी महर्षियों के साथ मेरा हर समय विचार परिवर्त्तन होता रहता है, वे सब मुझसे एक मत हैं।

कर्मयोगी धर्मदासजी ने कहा, इस सब फिजूल की बात से कुछ सिद्ध नहीं होगा। पहले सबको चरित्र सुधारना होगा, तब राष्ट्रीय सद्बुद्धि जागेगी। मेरी व्यवस्था बहुत सीधी है, सब लोग निरामिष होकर रहें, सब प्रकार की विलासिता का त्याग करें, एक मास (वामानवों का मास, पूर्वमानव के हिसाब से पचास वर्ष) निरविच्छिन्न ब्रह्मचर्य पालन करें, इस बीच बूढ़े अपने आप मर जायँगे और नयी प्रजा उत्पन्न न होगी, फलतः जगत की जनसंख्या आधी हो जायगी, युद्ध, दुर्भिक्ष, महामारी किसी चीज की जरूरत नहीं पड़ेगी, विशुद्ध धर्मसंगत उपायों से सबकी समस्या दूर हो जायगी।

पंडित सत्यकामजी बोले, मैंने बहुत सोचकर देखा है, दलीलबाजी से या अलौकिक उपायों से कुछ नहीं होगा। निरामिष भोजन, विलासिता त्याग और ब्रह्मचर्य सब वृथा है। ये सब उत्कट व्यवस्थाएँ हमारी प्रकृति के विरुद्ध हैं। न इन्हें अंतर्राष्ट्रीय कानूनों से जबर्दस्ती चलाया जा सकता है। आवश्यक है सत्य भाषण। इस सभा के सदस्यगण यदि मन के कपाट खोलकर निष्कपट चित्त से अपना अभिप्राय कहें तो विश्व शांति का उपाय सहज ही निर्धारित किया जा सकता है। हमने विज्ञान में इतनी उन्नति की पर वामानव चरित्र में कोई परिवर्त्तन नहीं कर सके। यह क्यों हुआ? क्योंकि विज्ञानी

लोग जिसका पर्यवेक्षण या परीक्षण करते हैं, उसमें छल नहीं है, जड़ प्रकृति धोखा नहीं देती इसीलिए उसके तथ्यों का निर्णय आसानी से हो सकता है। इसके विपरीत राष्ट्रों के प्रभु मिथ्या छोड़ एक पग भी नहीं चल सकते। इनका गूढ़ अभिप्राय क्या है, यह साफ-साफ कहे बिना शान्ति का उपाय निकल ही नहीं सकता। रोग के सब लक्षण जाने बिना चिकित्सा की व्यवस्था कैसे हो सकती है?

लार्ड ग्रैवर्थ ने मुँह बिचकाकर कहा, कोई यदि मन की बात न कहना चाहे तो उसे नाचकर बाहर कैसे निकाला जा सकता है? सच बुलवायेंगे कैसे आप?

जनरल वीरॉफ ने उत्तर दिया, दवा खिला कर। सोडियम पेंटोथाल का नाम सुना है आपने? उसके प्रभाव से कोई भी विवश होकर मन का भेद बक डालता है। हमारे देश में राष्ट्रद्रोहियों को यही चीज खिलाकर उनसे दोष कबूल कराया जाता है, उसके बाद चट् से गोली मार दी जाती है। हम लोग मुकदमों में समय नष्ट नहीं करते, वकीलों को भी व्यर्थ पैसा नहीं देते।

विश्वविख्यात विलक्षण वृद्ध डाक्टर भृंगराज नंदी बोले, मूर्ख, मूर्ख, ■■ मूर्ख हैं। पंटोथाल से बुद्धि जड़ होती है। व्यक्ति मन कहता है अवश्य, किन्तु उसकी विचार क्षमता लुप्त हो जाती है। हम लोग यहाँ नशेबाजों का अड्डा बनाने नहीं आये, जटिल विश्व राजनीतिक समस्याओं का समाधान करने आये हैं। पंटोथाल का काम नहीं है, मेरे नये आविष्कार वेरासिटीन का इन्जेक्शन देना होगा। गाँजे से उत्पन्न यह औषध अत्यन्त निरीह, पर अचूक है। कोई कितना ही घुटा कूटनीतिक क्यों न हो, यह उसका गला पकड़कर सच बुलवा लेगी, फिर भी बुद्धि को जरा भी क्षति न पहुँचायेगी। स्थायी अनिष्ट का भी कोई डर नहीं, एक घंटे बाद इसका प्रभाव मिट जायगा और फिर जितनी इच्छा उतना झूठ बोला जा सकेगा। औषध यहाँ मेरे पास है, सभापति महोदय आदेश दें तो सबको एक क्षण में सत्यवादी बना दे सकता हूँ।

काउंट नॉटिनफ ने पूछा, परीक्षा हो चुकी है?

भृंगराज ने उत्तर दिया, और नहीं तो क्या। अनेक चूहों और विलायती चूहों पर परीक्षा कर चुका हूँ।

जनरल वीरॉफ ने ठठाकर हँसते हुए पूछा, चूहों में भी सच झूठ होता है क्या? आप उनकी भाषा जानते हैं!

नंदी बोले, अवश्य जानता हूँ। उनकी भंगी देखकर समझा जा सकता है। दुम बायें को मुड़े तो समझ लीजिए कि नीयत अच्छी नहीं है, बात छिपा रहा है। दाहिने को मुड़े तो जानना चाहिए कि मन साफ और निश्छल है। इसके अतिरिक्त अपने एक शिष्य पर भी परीक्षा की है, जिससे फलस्वरूप उसकी पत्नी ने तलाक का दावा कर रखा है।

सभापति नड् लिङ् ने कहा, संदेह रखने की जरूरत क्या है, यहीं परीक्षा हो जाय न। कौन वालंटियर होंगे—कौन विज्ञानप्रेमी हैं, सामने आवें।

धर्मदास जी ने डाक्टर नंदी के पास आकर हाथ बढ़ाकर कहा, मैं राजी हूँ, दीजिये इंजेक्शन।

नंदी ने तत्काल जेब से एक बड़ी 'मैगजीन सिरिंज' निकाली और धर्मदास की बाँह में सुई लगाकर पंद्रह बूँद मात्रा में औषध प्रविष्ट कर दी। औषध के असर के लिए दो मिनट का समय देकर सभापति ने पूछा, अच्छा तो धर्मदासजी, अब अपने मन की बात खोलकर कहिये।

धर्मदास ने कहा, निरामिष भोजन अविलासिता और ब्रह्मचर्य। हाँ, बीच बीच में मैं आदर्शच्युत हुआ हूँ अवश्य।

जनरल कीरॉफ ने हँसकर कहा, इन सब पागलों पर परीक्षा करना व्यर्थ है जो स्वाभाविक अवस्था में भी अधिक झूठ नहीं बोलते, जैसा विश्वास रखते हैं वैसा ही प्रचार करते हैं। लीजिए, मुझे इंजेक्शन दीजिये, मुझे सच झूठ किसी पर भी आपत्ति नहीं है।

लार्ड ग्रैनर्थ ने अत्यंत चंचल होकर कीरॉफ का हाथ पकड़ते हुए कहा, हैं हैं, यह क्या कर रहे हैं आप—जरा ठहरिये! इस सब गड़बड़ में मत पड़िये। जिनके आत्मसम्मान है वे क्या कभी इनके लिए राजी हो सकते हैं? बात छिपाना हमारा विधिप्रदत्त अधिकार है, किसी नीम हकीम के पल्ले पड़कर उसे गँवा नहीं दे सकते। मोटा झूठ अत्यंत बर्बर चीज है यह मानते हैं, किंतु सूक्ष्म मिथ्या एक अमूल्य अस्त्र है, ताककर छोड़ने पर उससे जगत् जीता जा सकता है, उसे हम किसी तरह नहीं छोड़ सकते। मँजा हुआ झूठ ही सभ्य समाज का आश्रय और आच्छादन है, समस्त लोकाचार और राजनीति उसके ऊपर प्रतिष्ठित है। आपको लज्जा नहीं लगती? इस भरी सभा में उलंग हो जाना जैसा है, वैसा ही मन की बात प्रकाशित करना भी है।

जनरल कीरॉफ नहीं रुके। ग्रैनर्थ की पकड़ से अपना हाथ जोर से छुड़ाकर उन्होंने बढ़ा दिया, डाक्टर नंदी ने भी तत्काल सुई लगा दी। तब कीरॉफ ने दोनों भुजाओं से ग्रैनर्थ को जकड़ते हुए कहा, जल्दी, इन्हें भी सुई लगाइए—जरा ज्यादा दवा दीजियेगा! डाक्टर भृंगराज नंदी ने वेरामिटीन की डबल मात्रा दे दी। कीरॉफ की स्थूल लोमश बाहों के बंधन में छटपटाते हुए ग्रैनर्थ ने कहा, यह कैसी जबरदस्ती है! आप लोग समस्त अंतर्राष्ट्रीय कानून तोड़ रहे हैं! सभापति महोदय आप बिलकुल अकर्मण्य हैं! उठिये, फौरन हमारे देश के प्रधान मंत्री को टेलिफोन कीजिये। कीरॉफ ने कहा, बहुत बिगड़ा हुआ मरीज है यह, हड्डी हड्डी में रोग घुस गया है, लगाइये और डबल सुई! डाक्टर नंदी ने बिना शब्द व्यय के दुबारा सुई लगा दी। तब क्रमश शांत होते

हुए लार्ड ग्रैवर्थ ने मृदु स्वर से कहा, केवल हम दोनों को ही क्यों ? उस नज्जात गुंडे नॉटिनफ को भी लगाइये।

नॉटिनफ घूँसा तानकर ग्रैवथ को मारने झपटे। कीरॉफ ने उन्हें घेरते हुए कहा, ठहरिये, ठहरिये, सच बोलने में इतना डर किसका ? हम सभी एक दूसरे की चालें समझते हैं, साफ साफ कह देने में ही ऐसी क्या बुराई है ?

नॉटिनफ ने फुसफुसाते हुए कहा, अरे मैं क्या तुम लोगों की परवाह करता हूँ ? मेरी आपत्ति का कारण दूसरा है। अन्ताराष्ट्रीय अशांति से पारिवारिक अशांति कहीं भयानक है!

इसी समय दर्शकों की गैलरी से काउटेस नॉटिनफ का तीव्र स्वर आया, लगा दीजिये सुई जबरदस्ती! काउट सरासर झूठा है, मन्त्र से मुझे ठगता आया है।

इसी गड़बड़ से मौका पाकर डाक्टर नदी ने कुहना के बल भीतर घुसकर नॉटिनफ के कूल्हे में वेरासिटीन की सुई लगा ही तो दी। नॉटिनफ की पत्नी ने चिल्लाकर कहा, अब कबूल करो तुम्हारी प्रेमिकाएँ कौन-कौन हैं।

सभापति चङ् लिङ् ने कहा, आप घबराती क्यों हैं, प्रेमिकाएँ भाग थोड़े ही जायेंगी— अभी हम काम करने दीजिये। लार्ड ग्रैवर्थ, काउट नॉटिनफ, जनरल कीरॉफ, आप लोग एक एक करके साफ साफ कहिये कि आपके राजनीतिक उद्देश्य क्या हैं।

ग्रैवर्थ ने कहा, हमारा उद्देश्य बिल्कुल सीधा है। जिनके पास ताकत होती है उनकी वही एकमात्र राजनीति होती है। पर हितैषिता अपना के जीवन में अच्छी चीज है, किंतु अन्तर्राष्ट्रीय कारबार में उसका कोई स्थान नहीं। हम सभ्य असभ्य सबल दुर्बल सब देशों से भरसक उगाही करना चाहते हैं, इसमें न्याय अन्याय का सवाल नहीं उठता। दूध पीते समय बछड़े की व्यथा कौन सोचता है ! जब मांस के लिए, अथवा अन्य कारण से, गाय भेड़ बाघ-साँप चूहा मच्छर मारते हैं, तब क्या उनके स्वार्थ की परवाह करते हैं ? उद्भिज के भी प्राण होते हैं, यह सोचकर अहिंसक होकर पत्थर खाकर जी सकते हैं क्या ! हम सब प्रकार का सुख भोगना चाहते हैं, उसके लिए सब प्रकार के दुष्कर्म करने को प्रस्तुत हैं। किंतु हम सर्वथा निरंकुश नहीं हो सकते। शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी हैं, स्वभाव गत कोमलता भी है ही—जिसे मूर्ख कहते हैं धर्मज्ञान, फिर स्वजातीयों, और मित्र विजातीयों में कुछ एक दुर्बलचित्त धर्मनिष्ठ भी हैं जिन्हें सब समय ठगा नहीं जा सकता, शांत रखने के लिए बीच-बीच में त्याग स्वीकार करना पड़ता है। इस सभा का जो उद्देश्य है वह कभी भी सिद्ध नहीं होगा। प्रतिपक्षी के भय से बाधित होकर बीच बीच में थोड़ा बहुत स्वार्थत्याग किया जा सकता है, किंतु वैसी किसी पक्की व्यवस्था के लिए हम राज़ी नहीं। आज जो छोड़ेंगे कल सुविधा पाते ही फिर हथिया लेंगे। अभिव्यंजनावाद से तो आप परिचित हैं, अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

नॉटिनफ ने कहा, हमारी नीति भी ठीक ऐसी है। कर्म-पद्धति का थोड़ा बहुत भेद

है, किंतु उद्देश्य एक ही है। हम जातीय दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं, जगत का आधिपत्य एक दिन हमारे हाथ आवेगा ही, छल बल कौशल से जैसे भी हो हम अपनी मनोकामना सिद्ध करके रहेंगे।

बीरॉफ बोले, हमारा भी यही मत है। आपकी और हमारी पद्धति में बहुत अंतर है। दैववश हमारा देश विशाल है, अन्य देशों का शोषण करने की विशेष आवश्यकता हमें अभी तक नहीं हुई, किंतु भविष्य सोचकर हम लोग अभी से सतर्क हैं।

अचलदास जी माथा पकड़कर बोले, हाय हाय! इससे तो भूठ ही अच्छा था! उसमें फिर भी तनिक सी आशा थी कि ये लोग अभी सामर्थ्य के दंभ में भूले हुए हैं, पीछे कदाचित् इनकी न्याय बुद्धि को जगाया जा सके! अच्छा, लार्ड ब्रैनर्थ, एक प्रश्न का उत्तर दीजिये। हम अधीन जातियाँ धीरे-धीरे शक्तिमान हो रही हैं। आप चाहे जो कहें, जगत के सभी देशों में अब भी साधु पुरुष हैं जो हमारे सहायक हैं। एक दिन हम बंधन-मुक्त होकर ही रहेंगे। हमारे मनों में जो विद्वेष जमा हो रहा है, उसके फल से भविष्य में आप लोगों का कैसा सर्वनाश होगा इसे आप समझते हैं? हमारे साथ अभी अगर न्यायोचित विचार कर लें और उसके लिए कुछ त्याग भी करें तो भविष्य में हम भी आपको बिलकुल नगण्य कर देना न चाहेंगे। यह सहज सत्य आपकी समझ में क्यों नहीं आता?

ब्रैनर्थ ने कहा, अवश्य आता है। किंतु सुदूर भविष्य में इसकी पाने के लालच में हाथ आया रुपया कौन छोड़ता है? अपने पड़पोतों की फिक्र करके सिर दर्द मोल लेनेवाले हम नहीं हैं।

अचलदास दीर्घ निश्वास छोड़कर बैठ गये। निर्विंत महाराज ने एक बार फिर उनकी पीठ पर हाथ फेरकर कहा, भय क्या है, मैं तो हूँ।

धर्मदास बोले, इलेक्शन देकर लाभ क्या हुआ? सब तो हमारी जानी हुई बात है। हमारे शास्त्र में असुर प्रकृति का लक्षण दिया हुआ है

> इदमद्य मया लब्धमिदं प्राप्स्ये मनोरथम्
> इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
> असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि
> ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥
> आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशो मया।

'यह आज मिला, यह मनोरथ प्राप्त होगा, यह मेरा है, वह भी मेरा होगा। यह शत्रु मैंने मारा, दूसरे शत्रुओं को भी मारूँगा। मैं ईश्वर हूँ, मैं भोगी हूँ, सिद्धियाँ मेरी हैं, मैं बलवान और सुखी हूँ। मैं सधन और अभिजन-सेवित हूँ, मेरे जैसा और कौन है?'

सभापति ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर कहा, बड़े बड़े राष्ट्रों का उद्देश्य तो जाना गया, अब शांति के उपाय की चर्चा होनी चाहिए।

ग्रैबर्थ, नॉटिनफ, कीरॉफ एक सुर से बोले, हम मजे में हैं, शांति वांति फिजूल की बात है, हम लोग नखदंतहीन भलेमानुस होना नहीं चाहते, परस्पर मारकाट करते हुए आनंदपूर्वक जीवन यापन करना चाहते हैं।

इस सभा के एक सदस्य अब तक पीछे की पंक्ति में चुपचाप बैठे हुए थे। ये थे आचार्य व्योमवज्र दर्शनविज्ञानशास्त्री, जिनकी समस्त उपाधियाँ एक दस्ता फूलस्केप कागज में भी नहीं अँटती। अब यह उठकर बोले—विश्वशांति का उपाय मैंने खोज निकाला है।

डाक्टर भृंगराज नंदी ने पूछा—आपका भी कोई इनजेक्शन है क्या?

व्योमवज्र ने उत्तर दिया, पृथ्वी के कोटि कोटि जन को इनजेक्शन देना तो असंभव है। सर्वोत्तम उपाय है मेरा आविष्कृत विश्वव्यापक शांतिव्यापक बम, जिसके प्रभाव से सर्वत्र शांति विराजेगी। इस बम से जो आत्मिक रश्मियाँ निकलती हैं वे कस्मिक रश्मियों से हजारगुनी सूक्ष्म हैं। उनके स्पर्श से चित्तशुद्धि, काम क्रोध लोभादि का उच्छेद और आत्मा की बंधन मुक्ति होती है।

ग्रैबर्थ ने धमकाते हुए कहा, खबरदार, यहाँ किसी रहस्य का प्रकाशन नहीं कर सकते आप! हमारे धन से आपने गवेषणा की है। आपको जो कहना हो हमारे प्रधान मंत्री से एकांत में कहें।

नॉटिनफ उछलकर बोले, वाह! हमीं ने तो उसका सब खर्च उठाया है! बम हमारा है।

कीरॉफ ने कहा, आप सब टैम झूठे हैं। हमारा राष्ट्र बहुत दिनों से उनकी सहायता करता आ रहा है, उनका आविष्कार एकांत हमारी संपत्ति है।

व्योमवज्र ने दोनों हाथों से अभय देते हुए कहा, आप लोग घबरायें नहीं, मेरे बम पर आप सबका अधिकार है, आप सभी उससे उपकृत होंगे। अचलदासजी, आपकी भी सब दलबंदी और सकल दुर्दशा मिट जायगी। यह कहते हुए उन्होंने एक छोटी पोटली खोलना आरंभ किया।

सभा में गड़बड़ी फैल गयी। ग्रैबर्थ, नॉटिनफ, कीरॉफ और अन्यान्य समस्त राष्ट्र प्रतिनिधि पोटली छीनने के लिए धक्का-मुक्की करने लगे।

घमंडदास ने कहा, व्योमवज्रजी, अब देर क्यों करते हैं, फेंकिये न अपना बम।

व्योमवज्र को कुछ करना न पड़ा। सदस्यों की खींचा-तानी में बम उनके हाथ से गिरकर पटाखे-सा फट गया। कोई आवाज कानों में नहीं पड़ी, कोई चौंध आँखों को नहीं लगी, शब्द और आलोक की तरंग इंद्रियद्वारों तक पहुँचने से पहले ही समग्र गामानव जाति की इंद्रियानुभूति ही लुप्त हो गयी।

कुछ क्षण हतबुद्धि रहने के बाद ग्रैबर्थ बोले, शास्त्री का बम अच्छा रहा, ऐसा बोध होता है मानों हम सब साम्य मैत्री और स्वाधीनता पा गये। नॉटिनफ, कीगॉफ, तुम तो अपने दोस्त हो यार! भैया अनलदास, तुम तो हमारे परम आत्मीय हो। मैंने एक नया अन्तर्राष्ट्रीय गान रचा है, सुनो भाइ भाई एक रहो, भेद न हो भेद न हो। आओ, अब जरा गले मिला जाय।

निर्चित महाराज ने अनलदास की पीठ थपककर सगर्व कहा, मैंने कहा न था?

सभा में विजयादशमी और ईद मुबारक का सा भ्रातृभाव उमड़ आया। कुछ देर बाद नॉटिनफ ने कहा, आओ भाई, अब जरा विश्व के कोयले तेल गेहूँ गोधन भेड सुअर-रुइ चीनी रबर लोहे सोने प्रभृति का जरा हिस्सा बाँट हो जाय। जन संख्या के हिसाब से बँटवारा—कहिये क्या राय है?

व्योमवज्र ने हँसकर कहा, कोइ आवश्यकता न होगी इसकी। आप सब अब नश्वर देह से मुक्ति पाकर निरालम्ब वायुभूत हो गये हैं। अब नरक भी जा सकते हैं पुनर्जन्म भी ले सकते हैं, और लयलीन भी हो जा सकते हैं—जैसी जिसकी रुचि हो।

कीगॉफ ने कहा, आप क्या कहना चाहते हैं कि हम लोग मरकर प्रेत हो गये हैं? हम भूत प्रेत नहीं मानते।

व्योमवज्र ने उत्तर दिया, आप भले ही न मानिये। उसमें अन्य भूतों की कोइ क्षति नहीं है।

मृतवत्सा वसुधरा तनिक सुस्ता लेंगी, उसके बाद फिर सत्त्ववती होंगी। दुरात्मा और अकर्मण्य संतान के लोप का वह दुःख नहीं करेंगी। काल निरवधि है, पृथ्वी भी विपुला है। वह अलसगमना हैं, दस बीस लाख बरसों में उनका धैर्य नहीं चुक जायगा। सुप्रजावती होने की आशा में वह बार बार गर्भ धारण करेंगी।*

---

* लेखक की अनुमति से मूल बँगला से अनुवादित।

सत्यवती मलिक

काश्मीरी काव्य और कला

जगमगाते हीरे के समान उलट पुलटकर जिसके अतुल वैभव, अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य, एवं उत्तम छायी महानता के आगे बार बार सिर झुकाया है, उसी की मलिनता, दरिद्रता, आत्मगौरव हीनता, भाषा कला दारिद्र्य आदि का उपहास सुन जब तब गड़ सी गयी हूँ। और वास्तव में उस स्वर्ग भूमि में प्रत्यक्ष नारकीय जीवन यापन करनेवालों से इनकार भी कैसे किया जा सकता है?

उन यात्रियों की ही बात नहीं जो महज ठंडी हवा खाने, अथवा घोड़े पालकियों पर सवार उन देव-स्थानों में पुण्य लूटने के निमित्त आते हैं और गहन वन प्रांतों की अनिर्वचनीय शोभा और सुषमा को जहाँ-तहाँ जूठन फैलाकर बिगाड़ने का ही अधिकार रखते हैं। बल्कि अपने को कलाकार, एकांत सेवी, परिष्कृत रुचि का समझनेवाले उन व्यक्तियों की भी, जो कभी आस पास, नीचे इधर-उधर देखना भी पसंद नहीं करते।

इन्हीं में से एक सज्जन ने कुछ वर्ष पूर्व कहा था—'आप कश्मीरी लोगों की कला और साहित्य की बात करती हैं, उन्हें तो सूर्योदय और सूर्यास्त तक का पता नहीं? वहाँ की झीलों, वनों, फूलों, पर्वतों के सौंदर्य को वे क्या जानें।'

एक अन्य महानुभाव जो प्राय प्रतिवर्ष काश्मीर के उत्तुंग शिखरों पर, कलासाधना के हेतु जाते हैं, बोले, 'छी! छी! कश्मीरी लोग भी क्या इन्सान होते हैं?'

किंतु इन आक्षेपों पर जितनी ही क्षुब्ध हुई हूँ, उतने ही वेग से वे जहाँ-तहाँ, वनों में गूँजती ध्वनियाँ, वे भग्नावशेष, वे लाखों की संख्या में शहतूत के पेड़, और धान के खेत अथवा गंदे कच्चे घरों में, अपने देश के वृक्षों पत्तों-फूलों आदि के डिज़ाइनों को चित्रित कर, बारीक सुइयाँ चलाते हुए उस्तादों, संगतराशों बढ़इयों आदि की अनेक आकृतियाँ मेरे मन में उभर आयी हैं।

आश्चर्य तो यह है कि जब जब इस दबे हीरे को प्रकाश में लाकर देखने का प्रयत्न किया है, एक नयी चमक दिखायी दी है।

यह संभव भी कैसे था कि जो देश कुछ शताब्दि पूर्व अक्षयकोष का भंडार रहा हो, जिस चमत्कारिक भूमि ने कालिदास, कल्हण, बिल्हण, सोमदेव, मदनमिश्र प्रभृति अनेक महाकवियों और विद्वानों को जन्म देने का गौरव प्राप्त किया है, वह नितांत ही बाँझ हो जाय?

प्रमाण स्वरूप, भोजपत्र, तालपत्र, वहीं के बने शुद्ध सुंदर चिकने कागजों पर मोतियों से हस्ताक्षरों में, शारदा देवनागरी, संस्कृत आदि में हस्तलिखित ग्रंथों के पुस्तकालय आज भी प्रसिद्ध पंडित गृहों में विद्यमान हैं।

इस वृहत् साहित्य का संग्रह, काश्मीर स्टेट के पुरातत्व विभाग ने वहीं के विद्वानों द्वारा 'काश्मीर ग्रंथावली' के रूप में करवाया है।

इसके अतिरिक्त आधुनिक काश्मीरी भाषा के विषय में, जो प्राचीन संस्कृत का ही रूपान्तर है और जो पन्द्रहवीं शताब्दि में फारसी, कश्मीरी व संस्कृत कश्मीरी दो धाराओं में प्रवाहित होती रही।

लोगों की यह धारणा कि वह कोई लिखित या संस्कृत भाषा नहीं डा० ग्रियर्सन, डा० स्टाईन और डा० नील आदि विद्वानों की खोज, परिश्रम और अमूल्य सेवाओं के बाद निर्मूल सिद्ध हुई।

'कश्मीरी भाषा और साहित्य' शीर्षक सुंदर लेख में श्रीशिवदानसिंह चौहान ने कश्मीरी साहित्यकारों पर पूर्ण प्रकाश डाला है, सो इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, इस लेख में उन्हीं में से प्रमुख कवियों की कुछ पंक्तियों का आस्वादन कराना अभिप्रेत है।

सबसे प्रथम श्रीललितेश्वरीदवी, उपनाम ललेश्वरी के विचारों की सूक्ष्मता देखिये, जो वेदांत की पंडिता थीं।

अख्यान आय न गछुन गछे।
पकुन गछे दिन क्याह राथ॥
योरय आय तुर्य गछुन गछे।
कँह न त कँह न त क्याह॥

अर्थात्—अनादि से हम आये और अनंत में हमें जाना है, दिन रात हम चलते रहना चाहिए। जहाँ से आये वहीं जाना है—कुछ नहीं, कुछ नहीं, यह संसार कुछ नहीं।

दाद शांत मंडल यस देवस थजय।
नासिक पवन अनहद रव॥
स यस कल्पन अतिह चलिय।
स्वयम् देव त अर्चन कस॥

अर्थात्—ब्रह्मरंध्र को जिसने शिव-स्थान जाना, प्राणवायु के प्रवाह के साथ-साथ जिसने अनहद को सुना और जिसकी वासनायें अंदर ही अंदर मिट गयीं, वह तो स्वयं ही देव है, शिवरूप है, फिर पूजा काहे की।

इसके बाद स्त्रियों में विशेष स्थान हब्ब खातून का है। ये महासम्राट् अकबर के समय कश्मीर के गवर्नर की पत्नी थीं, बादशाह ने किसी कारण से इनके पति को कत्ल करवा दिया, तब हब्ब खातून घर त्यागकर वैरागिन हुई और सारी आयु प्रेम-गीत गाते हुए बिता दीं। इनके गीतों में फारसी शब्दों की अधिकता है।

लति युवनम दऽ'द फिरक कति लुगसय रसय।

मस छी रउन यडर करनस, मच व फलवान॥

लति (अपने को सम्बोधित कर) मेरे निष्ठुर! ने मुझे विरह वेदना दी है, न जाने उसका मन कहाँ रमा है? उस प्रियतम ने मेरी मस्ती को छिन्न भिन्न कर दिया, मैं बावली होकर फिर रही हूँ।

मुंशी भवानीदास की स्त्री भी अपने समय की अच्छी कवयित्री थी। चर्खा कश्मीरी स्त्रियों की विशेष प्रिय वस्तु है, पश्मीना व ऊन कातते हुए ये प्रायः गाती हैं। चर्खे पर ही एक उनकी सुंदर कविता है, किंतु एक रूप-कविता म निम्न पंक्तियाँ कितनी भावपूर्ण हैं।

आम तार कोताह गजस, श्याम सुंदर बामन लजस।

नाम पैगाम कबुनिय, कर इये दर्शन दिय॥

अर्थात्—मैं उसके विरह की अग्नि कहाँ तक सहूँ? हे श्याम सुंदर! मेरी सखियाँ मुझे ताने देती हैं। मेरा संदेश तुम तक कौन ले जायगा।

इसी प्रकार अनेक फुटकर सुंदर कविताये स्त्रियों द्वारा रचित मिलती हैं।

पुरुष कवियों में सबमें उच्चकोटि के अध्यात्मवादी कवि पण्डित श्री परमानंद हुए हैं। ये प्राचीन मंदिर मार्तण्ड के समीप ही रहनेवाले और पटवारी थे। इनके पिता फारसी कश्मीर के विद्वान् और पटवारी थे। पण्डित परमानंद सतरह वर्ष तक की अवस्था तक जीविका के लिये सरकारी पद पर नियुक्त रहते हुए भी भक्ति रस में लीन रहे, उनके रचित रत्नाकर कृष्ण लीला, सुदामा चरित, शिवलग्न आदि ग्रंथों के अत्यंत मधुर छंदों की तुलना सूरदास से ही की जा सकती है। ये निरंतर ज्ञान के सागर में गोता लगाना चाहते थे। एक बार अपनी वर्तमान दशा से असंतुष्ट होकर उनके मुख से निकल पड़ा—

त्राहि माम्! त्राहि माम्! हे मुरारि।

कट संकट, हे मुकुट धारि॥

अमरनाथ की यात्रा को प्रतिवर्ष जाते हुए अनेक साधुओं और काशी के पंडितों की सत्संगति ने उन्हें एक ऊँचे धरातल पर पहुँचा दिया, वेदांत की शिक्षा प्राप्त हुई, इस प्रकार ध्यान योग, साधना करते हुए एकाएक उन्हें प्रतीत हुआ कि साक्षात् सरस्वती मानों उनकी वाणी से प्रवाहित होना चाहती हैं।

कन थव सरस्वती छय वनन ।
वन्य्-वन्य् पान् छुयना सनन ॥

"सुनो ! सरस्वती स्वय बोल रही है ! बार बार कहा, पर तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता ।"
सुदामा चरित के प्रारभ मे कितनी सुदर उनकी कविता है '—

पपोश - वागस - मेज वथुरावय ।
भावय पनुनी गोस तु गम ॥

अर्थात्—पद्मवन में तुम्हारे लिये आसन बिछाऊँगी और अपने कष्टों व दुःख सुख की गाथा कहूँगी ।

राधा स्वयवर के छदों में प्रत्येक अतिम चरण मे—

चित्त विमर्श दीप्ति मान भगवानों

के साथ व्यक्ति झूम पड़ता है । लोग बतलाते हैं कि जब वे पद गाते थे, तो उनके हृदय का कण-कण नाच उठता था और प्राय गाते गाते वे समाधिस्थ हो जाते थे ।

आधुनिक कवियों में से कवि महजूर देश के प्राण हैं । वे गर्धव नल (गाधर नल) के पास प० परमानद की भाति ही पटवारी हैं । किंतु उनकी कविता जन-साधारण में अधिक व्याप्त हो गयी है, वे काश्मीर की अनुपम प्राकृतिक छटा और विचरने वाले दीन हीन जनों के मनोभावों एव सौंदर्य के पुजारी हैं । उनकी कविता 'ग्रीसकूर' (किसान कन्या) का अनुवाद सुनकर श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि महजूर 'काश्मीर के वर्ड्सवर्थ हैं ।'

पोष वन बागच्य पोष गदरिए,
ग्रीस कूरय नाजनीन सोंदरय ।
सोगाचि हिय मेल्य बागच्च परिए,
ग्रीस कूरय नाजनीन सौंदरय ।
आजाद वनच्यो पोष थरिए,
मूश्क सेत्य दुस्थ कमी जरिए ॥
सत्य रग बखशी कमी रगरिए,
ग्रीस कूरय नाजनीन सोंदरय ।

दजि प्यठ वूछियस थोद लदिथ
लो लो करान लोलरिए।
नरि मा लोयस चूरकरि नरिए करिए
ग्रीस कूरय नाजनीन सोंदरय॥

अर्थात् —

'हे फूलों से भरे वन के समान, नाग से लेकर गूँथे गुलदस्ते के समान, सुकुमार सुन्दर कृषक कन्या।

हे स्वर्ग की हिममाला और नागों की परी-सी कृषक कन्या तू कितनी सुदर है।

हे स्वतन्त्र वन की पुष्प वेल, तुम्हारी कलियाँ सुगध से किसने भर दी है? इन्द्रधनुष के सात रग तुम्हें किस रगरेज ने बख्श दिए हैं?

खेत में तुम्हें अपनी आस्तीनें ऊपर किये हुए मधुर गान गाते हुए देखा। काम करते-करते तुम्हारी बाहें थक तो नहीं गईं। तुम सुकुमार जो हो।'

इसी प्रकार निनली, निशात बाग के फूलों और यहाँ कन्या पर महजूर की अत्यत सुदर कविताय, उस उपत्यका म सुरभि बन गूँज रही हैं। उनके सग्रह उर्दू व देवनागरी दोनों लिपियो म प्रकाशित हैं।

महजूर के प्रमुख तथा प्रिय साथी व शिष्य कविवर 'आजाद' राष्ट्रीय भावों के लिये प्रसिद्ध हैं, अपने देश के कण-कण ने उन्हें कैसा प्रभावित किया है, यह वितस्ता पर उनकी निम्न कविता के कुछ अशो म देखिये —

वेर नाग च मारि यछि परिये, सुदरिये बोजि म्यान जार।
यदराजन महा सुदरिये च्योन माल्युन तल पाताल
छद येंदु चोन नामवरिये, सुदरिये बोजि म्यान जार।
छय खे स्वर्गा पूंय, शाह परिये छूये जन्मेक सगुनवान
चानि दर्शन सर न गेय सरिये, सुदरिये बोजि म्यान जार।
ज्ञान छुत नय पनन्य आगरिये, थहि लोयुय् सदस पान
माम्य वादुक नाद कर करिये, सुदरिये बोजि म्यान जार।

'वेर नाग की सुदर अप्सरी! हे सुदरी, मेरी विनती तो सुनो।

राजा इन्द्र की महासुन्दरी! तुम्हारा निवास-स्थान तो पाताल में है, पर भारत भर म तुम्हारी नामावरी है, तनिक रुककर मेरी बात तो सुनो

कन थव सरस्वती छय वनन ।
वन्य्-वन्य् पान् छुयना सनन ॥

"सुनो ! सरस्वती स्वय बोल रही है ! बार बार कहा, पर तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता ।"
सुदामा चरित के प्रारम में कितनी सुदर उनकी कविता है :—

पपोश - वागस - मेज वथुरावय ।
भावय पनुनी गोस हु गम ॥

अर्थात्—उपवन में तुम्हारे लिये आसन बिछाऊँगी और अपने कष्टों व दु ख सुख की गाथा कहूँगी ।

राधा स्वयंवर के छदों में प्रत्येक अंतिम चरण में—

चित्त विमर्श दीप्ति भान भगवानों

के साथ व्यक्ति झूम पड़ता है । लोग बतलाते हैं कि जब वे पद गाते थे, तो उनके हृदय का कण-कण नाच उठता था और प्राय गाते गाते वे समाधिस्थ हो जाते थे ।

आधुनिक कवियों में से कवि महजूर देश के प्राण हैं । वे गर्धव नल (गाधर नल) के पास प० परमानद की भांति ही पटवारी हैं । किंतु उनकी कविता जन साधारण में अधिक व्याप्त हो गयी है, वे काश्मीर की अनुपम प्राकृतिक छटा और विचरने वाले दीन हीन जनों के मनोभावों एव सौंदर्य के पुजारी हैं । उनकी कविता 'ग्रीसकूर'(किसान कन्या) का अनुवाद सुनकर श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा था कि महजूर 'काश्मीर के वर्ड्सवर्थ हैं ।'

पोष वन बागच्य पोष गदरिए,
ग्रीस कूरय नाजनीन सौंदरय ।
सोंगचि हिय मेल्य बागच परिए,
ग्रीस कूरय नाजनीन सौंदरय ।
आजाद वनच्यो पोष थरिए,
मूश्क सेत्य हुस्थ कमी जरिए ॥
सत्य रग वस्वशी कमी रगरिए,
ग्रीस कूरय नाजनीन सौंदरय ।

'फूलों के दीवाने प्रियतम क्या रूठ कर चले गये ?
मैंने तुम्हें देखा, बहुत दूर से जाते हुए मैं स्वर्ग की अप्सरा व्याकुल हो रही हूँ,
सुबके-सुबके रोती हूँ, तुम रूठ कर चले गये .
मैं पहाड़ी पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।'

वे आर दिलदार, मदन वारे
म्यानि माहवारे यूर यितमो।
ब जुम अस्नहम सुबहन बानस,
जागें शबनम लागिथ ब
शायद पादन चान्यन लोरे,
म्यानि माह पोरे यूर यितमो

'आह! मेरे निष्ठुर प्रियतम, मेरे चाँद के टुकड़े यहाँ आओ
मैंने सुना, तुम प्रभात को मेरे बाग में आ जाओगे, मैं शबनम बनकर तुम्हें लगूँगी, सम्भव है कुछ कुछ तुम्हारे पैरों से लिपट जाऊँ
ओ! मेरे फूलों के दिवाने '

इस प्रकार, काश्मीरी काव्य में जाफरान (केशर) आस्मान, पापोश (कमल) और वहाँ के अद्भुत चीनों नदी, नालों आदि का अनुपम वर्णन है। और उसमें वहाँ की प्रकृति जिस सूक्ष्म तूलिका एवं अलौकिक हाथों से गढ़ी गयी है, वाणी भी उतनी मृदु और सूक्ष्म भावों से पूरित है। हाँ! सुनने के लिए जाना होगा, एकांत वन प्रांतर में, झीलों के तीर पर, दूर-दूर तक फैले माली के खेतों के आस पास और कानों को उतना ही सूक्ष्म, दृष्टि को उतना ही व्यापक और हृदय को उतना ही ग्रहणशील और गहन बनाना पड़ेगा।

ए देवलोक का वासी ! तुम तो इस स्वर्ग लोक पर बीनों बीन, मानों रागिनी को मौन करते हो। तुम्हारे दर्शन मात्र से पहुँचा सारा व्यक्ति भी नशा ग्रहण करते हैं।

तुम्हारे ममत्व ने ही तुम्हें स्वाभाविक ज्ञान दिया है कि तुम अपनी छोटी-छोटी लहरों (तरंगिनों) को साथ लेकर आह्लाद का नाद गुँजा रही हो।'

ऊपर वर्णित लिखित साहित्य के अतिरिक्त कितनी धुनें, कितने गीत ऋतु ऋतु के यहाँ बिखर पड़े हैं जो घाटी यह सारी प्रकृति में लीन, ध्यान मग्न, यात्री को सहसा चकित और भावातुर कर देते हैं ! उदाहरणार्थ, शालि धान काटने के दिनों में हरे पीले खेतों में गड्ढे काटते रहते हुए एक व्यक्ति पहले गाता है और शेष पीछे उसी चरण को दोहराते हैं—यह गूँज मानों एकांत शांत पर्वत श्रेणियों में प्रतिध्वनित हो सारी उपत्यका में फैल जाती है

गोनि_करन्ये वोन्यवी हूरण लाल दीदार दियि ना ।
दिलस्य नेयूनम मीथ चूरण चारु करुन्य यियिमा ॥

'अप्सराओं से कह दो कि वे धान के ढेर बाँधें। सभव है मेरा प्रियतम दर्शनो को आये। उस प्रेम के मतवाले ने मेरा दिल छीन लिया, शायद मेरी सहायता को, मेरी रक्षा करने को आ जाये'

डाँ डूस्यग मँज बागन, लग्य दों कुल्य बटने,
रोह करन्ये बीसवी आरस गुलिलाल यूर पियि मा ।
पोंच हयोल व्ययि चवूरम यियि मा म्योति रटने,
गौनि करन्ये बोन वी हूरण लाल दीदार दियि मा ॥

'दालिदानो के बीच धान के नन्हे नन्हे पौधे काँप रहे हैं। आओ हम इसके चारो ओर घूम घूम कर नाचें, शायद वह गुले लाला आ जाये। सभव है धान की पकी बाली भौंरे के लिपटने को आये, इसलिये आओ ! कह दो अप्सराओ को कि वे धान के ढेर बाँधें, शायद मेरा भूला प्रियतम दर्शनों को आये ! यह प्यार भरा दिल अब उसके प्रेम के लिये फट जायगा। हाय ! यदि वह आये तो हम अनाज का एक एक दाना अपने हाथों से खिलायेंगे। यदि वह भूला प्रियतम फिर आ जाये'

इन फसली गीतों के बाद वे करुण गीत कवितायें जो मल्लाह कभी चाँदनी रातों में, 'शिकारों' (छोटी नावो) के साथ थपथपाती लहरो से सुर मिलाकर गा उठते हैं।

चोल्हमा रोशे रोशे, पोशे मा मन जाननो,
बुछ मुखा दूरे दूरे सन् गोम स्वर्गच हूरे
छस वादान चूरे चूरे, पोशे मति जानानो ॥

'फूलों के दीवाने प्रियतम क्या रूठ कर चले गये ?
मैंने तुम्हें देखा, बहुत दूर से जाते हुए में स्वर्ग की आसरा व्याकुल हो रही हूँ, चुपके-चुपके रोती हूँ, तुम रूठ कर चले गये ।
मैं पहाड़ी पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ ।'

बे आर दिलदार, मदन वारे
म्यानि माहवारै यूर यितमो ।
बू जुम अचहम बुबहन बानस,
जागे शबनम लागिथ व
शायद पादन चान्यन लोरे,
म्यानि माह पोरे यूर यितमो

'आह ! मेरे निष्ठुर प्रियतम, मेरे चाँद के टुकड़े अब आओ
मैंने सुना, तुम प्रभात को मेरे बाग में आ जाओगे, मैं शबनम बनकर तुम्हें ताकूँगी, सम्भव है कुछ कुछ तुम्हारे पैरों से लिपट जाऊँ
ओ ! मेरे फूलों के दिवाने '

इस प्रकार, काश्मीरी काव्य में जाफ़रान (केशर) आस्मान, पापोश (कमल) और वहाँ के अद्भुत चीज़ों नदी, नालों आदि का अनुपम वर्णन है । और उसमें वहाँ की प्रकृति जिस सूक्ष्म तूलिका एवं अलौकिक हाथों से गढ़ी गयी है, वाणी भी उतनी मृदु और सूक्ष्म भावों से पूरित है । हाँ ! सुनने के लिए जाना होगा, एकांत वन प्रान्तर में, झीलों के तीर पर, दूर दूर तक फैले शाली के खेतों के आस पास और कानों को उतना ही सूक्ष्म, दृष्टि को उतना ही व्यापक और हृदय को उतना ही ग्रहणशील और गहन बनाना पड़ेगा ।

हे देवलोक की परी ! तुम तो इस स्वर्ग लोक के बीचों बीच, मानों क्यारियों को सींच रही हो तुम्हारे दर्शन मात्र से प्रभुता प्राप्त व्यक्ति भी नम्रता ग्रहण करते हैं ।

तुम्हारे जन्मदाता ने ही तुम्हें स्वाभाविक वर दिया है कि तुम अपनी छोटी-छोटी साथिनों (उपनदियों) को साथ लेकर साम्यवाद का नाद गुँजा रही हो ।'

ऊपर वर्णित लिखित साहित्य के अतिरिक्त कितनी धुनें, कितने गीत ऋतु ऋतु के वहाँ बिखरे पड़े हैं जो योंही राह चलते प्रकृति में लीन, ध्यान मग्न, यात्री को सहसा चकित और चमत्कृत कर देते हैं । उदाहरणार्थ, शालि धान काटने के दिनों में हरे पीले खेतों में गट्ठे काटते रखते हुए एक व्यक्ति पहले गाता है और शेष पीछे उसी चरण को दोहराते हैं— यह गूँज मानो एकांत शांत पर्वत श्रेणियों में प्रतिध्वनित हो सारी उपत्यका में फैल जाती है

गोनि_करन्ये वोन्यवी हूरण लाल दीदार दियि ना ।
दिलम्य नेयूनम मीथ चूरण चारु करुन्य वियिमा ॥

'अप्सराओं से कह दो कि वे धान के ढेर बाँधें । संभव है मेरा प्रियतम दर्शनों को आये । उस प्रेम के मतवाले ने मेरा दिल छीन लिया, शायद मेरी सहायता को, मेरी रक्षा करने को आ जाये'

दाँ छुस्यग मॅज बागन, लग्य दों कुल्य बटने,
रोह करन्ये बीसवी आरस गुलिलाल यूर यियि मा ।
पोंच हयोल व्ययि बबूरम यियि मा म्योति रटने,
गोनि करन्ये बोन वी हूरण लाल दीदार दियि मा ॥

'खलिहाना के बीच धान के नन्हे नन्हें पौधे काँप रहे हैं । आओ हम इसके चारों ओर घूम घूम कर नाचें, शायद वह गुले लाला आ जाये । संभव है धान की पकी बाली भौंरे के लिपटने को आये, इसलिये आओ ! यह दो अप्सराओं को कि वे धान के ढेर बाँधें, शायद मेरा भूला प्रियतम दर्शनों को आये ! यह प्यार भरा दिल अब उसके प्रेम के लिये फट जायगा । हाय ! यदि वह आये तो हम अनाज का एक एक दाना अपने हाथों से खिलायेंगे । यदि वह भूला प्रियतम फिर आ जाये'

इन फसली गीतों के बाद वे करुण गीत-कवितायें जो मल्लाह कभी चाँदनी रातों में, 'शिकारों' (छोटी नावों) के साथ थपथपाती लहरों से सुर मिलाकर गा उठते हैं ।

चोल्हमा रोशे रोशे, पोशे मा मन जाननो,
बुछ मुखा दूरे दूरे सनू गोम स्वर्गच हूरे
छस वादान चूरे चूरे पोशे मति जानानो ॥

'फूलों के दीवाने प्रियतम क्या रूठ कर चले गये ?

मैंने तुम्हें देखा, बहुत दूर से जाते हुए, मैं स्वर्ग की अप्सरा व्याकुल हो रही हूँ, चुपके-चुपके रोती हूँ, तुम रूठ कर चले गये

मैं पहाड़ी पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।'

ये आर दिलदार, मदन वारे
म्यानि माहवारे यूर यितमो।
व् जुम अचहम सुबहन बागस,
जागे शबनम लागिथ व
शायद पादन चान्यन लोरे,
म्यानि माह पोरे यूर यितमो

'आह ! मेरे निष्ठुर प्रियतम, मेरे चाँद के टुकड़े अब आओ

मैंने सुना, तुम प्रभात को मेरे बाग में आ जाओगे, मैं शबनम बनकर तुम्हें ताकूँगी, सम्भव है कुछ कुछ तुम्हारे पैरों से लिपट जाऊँ

ओ ! मेरे फूलों के दिवाने'

इस प्रकार, काश्मीरी काव्य में जाफरान (केसर) आसमान, पापोश (कमल) और वहाँ के अद्भुत चीनों नदी, नाला आदि का अनुपम वर्णन है। और उसमें वहाँ की प्रकृति जिस सूक्ष्म तूलिका एवं अलौकिक हाथ से गढ़ी गयी है, वाणी भी उतनी मृदु और सूक्ष्म भावों से पूरित है। हाँ ! सुनने के लिए जाना होगा, एकांत वन प्रांतर में, झीलों के तीर पर, दूर दूर तक फैले माली के खेतों के आस पास और कानों को उतना ही सूक्ष्म, दृष्टि को उतना ही व्यापक और हृदय को उतना ही ग्रहणशील और गहन बनाना पड़ेगा।

गिरिजाकुमार माथुर

बरफ़ का चिराग

हिम के सफेद दीपक की लौ
अब हुई लाल !
सदियों से जमी हुई मिट्टी
हो गयी ज्वाल।

यह कमल धरा का जरफीला,
यह झील कटोरा चमकीला,
ठंडे खेतों का कुसुम बदन
केसर की झाँई से पीला,

लंबे चिनार के पेड़
घाटियों के प्रहरी
नभ की उजली परछाई
है जिनपर ठहरी।

उठ रहीं शैल मालाएँ
सदियों से जवान,
हर मंजिल खिंची हुई है
फूलों की कमान,

गोरे मुख पर उड़ता है
हल्का पवन चीर,
है स्वर्ग एक कल्पना
सत्य है काश्मीर।

सूरज सोने का फूल,
चाँद हिम का चिराग
उस दूध धुली मिट्टी से अब
उठ रही आग।

बनकर शमशीर उठी जनता
बजता- पर्वत का नक्कारा
नदियाँ बिजली बन उतर पड़ीं
हो गया लाल ध्रुव का तारा।

धरती के ये जन पूरा
जगे बनकर मशाल।
हिम के सफेद दीपक की लौ
अब हुई लाल।

इन चदन की सीमाओं में
आ गया एक दुर्घर्ष नाग,
पड़ गया धूप के आंचल पर
मानवी रक्त का श्याम दाग।

ये महादेश का शुभ्र कलश
लहराया इसपर जन केतन,
जो जीवन मृत केंचुल-सा था
वह निर्गति पिंड हुआ चेतन।

गिरि में निमग्न मनु की आत्मा
जब उठ आयी कर सिंहनाद,
पथ की रज लेने उतर पड़ा
सिंहासन से सामंत वाद।

आघात हुआ यह
अचल हिमाचल के तन पर,
जन उन्नायक प्रलयंकर
शंकर के मन पर,
जो अग्नि ला रही है जग में
नूतन झंझावात,
वह कर देगी यह विष भी
भस्मीभूत शांत।

बस इसीलिए झुक सका नहीं
यह दग्ध भाल।
हिम के सफेद दीपक की लौ
अब हुई लाल।

मोरस्थीय माइका की भविष्यवाणी

[बाइबिल के पुराण खंड में पैगम्बरों की जो भविष्यद्वाणियाँ संग्रहीत हैं, वे नीति परक काव्य साहित्य में अद्वितीय स्थान रखती हैं। इन कवि द्रष्टाओं के संदेश में सम वर्ती बहु देवता पूजक समाजों के नैतिक भ्रष्टाचारों का तीव्र विरोध, कर्मकांड को छोड़ शुद्धाचरण के द्वारा एकेश्वर की उपासना का आग्रह, और शासक वर्गों के प्रति लोक जन का अविराम विद्रोह कूट कूट कर भरा हुआ है। तत्कालीन सामाजिक और राज नीतिक संगठन के ध्वंस की जो पूर्व सूचना वे देते रहे, वह कालांतर में सत्य हुई, जो इस बात का प्रमाण है कि उनमें युग लक्षण पहचानने की अमोघ प्रतिभा थी।

एमोस और होजीया इन देवज्ञों में प्रथम हैं। पर्वतवासी एमोस की अनिष्ट घोष णाओं से अप्रसन्न होकर उत्तरी राज्य समरिया के शासकों ने उसे बहिष्कृत करके दक्षिण भेज दिया, किंतु कुछ वर्षों बाद उन्हीं के मध्य में दूसरा पापशत्रु होज़ीआ प्रकट हुआ। बीस वर्ष बाद असीरियों ने आकर समरिया का ध्वंस किया और अधिकांश प्रजा को दास बनाकर ले गये।

उत्तरी राज्य की इस दुर्घटना के बाद दक्षिण में जूडा राज्य में एक अप्रतिहत स्वर गूँज गया। मोरस्थीय माइका ने घोषित किया कि राजाओं और पुरोहितों के अनाचारों का दंड ईश्वर उनकी शक्ति ध्वस्त करके और राज्य को निश्चम्त करके देगा।

किंतु माइका ने यह भी देखा और सूचित किया कि दंड की अवधि पूरी होने पर पापमुक्ति का युग आयेगा। पाश्चात्य जगत में कदाचित उसी ने पहले पहल विश्वशांति का स्वप्न देखा और उसका प्रचार किया। यह स्वप्न आज भी स्वप्न ही है, तब उस समय की परिस्थिति में वह कितनी धुँधली आधारहीन कल्पना रही होगी! माइका के लिए वह उसके इस अभिनव विश्वास का सीधा परिणाम था कि ईश्वर युद्ध का देवता नहीं न्याय का देवता है।

माइका की भविष्यद्वाणी पापाचरण से मर्माहत, किंतु परम आस्तिकता के कारण 'सत्यमेव जयते' के निष्कंप विश्वासी एक मनीषी की उक्ति है।

—बाइबिल यद्यपि गद्यवत् छपता है, तथापि उसमें गद्य पद्य दोनों ही हैं। हिब्रू कविता में छंद और तुक नहीं है, यद्यपि उसे मुक्तछंद कहना भी ठीक न होगा। निरे 'लययुक्त गद्य' से भी वह भिन्न है, क्योंकि उसमें संतुलित पदों अथवा वाक्य खंडों के सम-प्रमाण विधान अथवा व्यूहन से वह स्वर संगति उत्पन्न होती है जो छंद का काम दे, और प्रतीक्षा की वह संपूर्ति होती है जो कि तुक का उद्दिष्ट है।

प्रस्तुत अनुवाद संपूर्ण वाणी का नहीं, केवल पूर्वार्ध का है।

—अनुवादक]

सुन ओ जनता,
सुन, ओ धरित्री और उस पर बसनेवाले प्राणियों !
ईश्वर तुम्हारे विरुद्ध साक्षी देता है
अपने पवित्र मंदिर से !
क्योंकि देखो—
अपने स्थान से निकल कर वह नीचे आयेगा
गिरिशृंगों पर चरण रखता हुआ,
और उसके तेज से पर्वत गल जायेंगे,
उपत्यकाएँ फट जायेंगी,
जैसे आग पे समीर मोम—
जैसे ऊँचाई से बहाया हुआ पानी !

याकोब के अपराध की यह शास्ति है,
और इज़राईल के वंश के पापों की !
और याकोब का अपराध क्या है ?
क्या सम्पूर्ण समरिया ही वह नहीं है ?
और जूडा के शिखर क्या हैं ?
क्या यरूशलम ही वह नहीं है ?
अतएव मैं समरिया को धूल का ढेर बना दूँगा,
या कि उजड़ी हुई बगिया,
और उसका एक एक पत्थर घाटी में बिखेर दूँगा।
उसकी नींव को उघाड़कर रख दूँगा।

और उसकी सब उत्कीर्ण मूर्तियाँ खंड-खंड हो जायेंगी,
और उसका सब नैवेद्य आग में भस्म हो जायेगा,
और सब देवस्थानों को मैं ध्वस्त कर दूँगा
क्योंकि वे सब व्यभिचार के पण से पले हैं
और व्यभिचार के पण में ही लुट जायेंगे !

अतएव मैं रोऊँगा, विलाप करूँगा फिरूँगा नंगा भटकता हुआ—
अजगरों और उल्लुओं की पुकार सी गूँजेगी मेरे क्रन्दन की हूक !
क्योंकि असाध्य है उसका घाव, क्योंकि वह जूडा तक फैल गया है,
क्योंकि वह मेरी जाति के द्वार तक आ गया है, स्वयं यरूशलम में व्याप्त है।

मोरस्थीय माइका की भविष्यवाणी

[बाइबिल के पुराण खंड में पंगबरों की जो भविष्यद्वाणियाँ संग्रहीत हैं, वे नीति परक काव्य साहित्य में अद्वितीय स्थान रखती हैं। इन कवि द्रष्टाओं के संदेश में सम वर्ती बहु देवता पूजक समाजों के नैतिक भ्रष्टाचारों का तीव्र विरोध, कर्मकांड को छोड़ शुद्धाचरण के द्वारा एकेश्वर की उपासना का आग्रह, और शासक वर्गों के प्रति लोक जन का अविराम विद्रोह कूट कूट कर भरा हुआ है। तत्कालीन सामाजिक और राज नीतिक संगठन के ध्वंस की जो पूर्व सूचना वे देते रहे, वह कालांतर में सत्य हुई, जो इस बात का प्रमाण है कि उनमें युग लक्षण पहचानने की अमोघ प्रतिभा थी।

एमोस और होजीआ इन द्रष्टाओं में प्रथम हैं। पर्वतगामी एमोस की प्रसिद्ध घाप णाओं से अप्रसन्न होकर उत्तरी राज्य समरिया के शासकों ने उसे बहिष्कृत करके दक्षिण भेज दिया, किंतु कुछ वर्षों बाद उन्हीं के मध्य में दूसरा पापशत्रु होजीआ प्रकट हुआ। तीस वर्ष बाद असीरियों ने आकर समरिया का ध्वंस किया और अधिकांश प्रजा को दास बनाकर ले गये।

उत्तरी राज्य की इस दुर्घटना के बाद दक्षिण में जूडा राज्य में एक अप्रतिहत स्वर गूँज गया। मोरस्थीय माइका ने घोषित किया कि राजाओं और पुरोहितों के अनाचारों का दंड ईश्वर उनकी शक्ति ध्वस्त करके और राज्य को निरस्त करके देगा।

किंतु माइका ने यह भी देखा और सूचित किया कि दंड की अवधि पूरी होने पर पापमुक्ति का युग आयेगा। पाश्चात्य जगत में कदाचित उसी ने पहले पहल विश्वशांति का स्वप्न देखा और उसका प्रचार किया। यह स्वप्न आज भी स्वप्न ही है, तब उस समय की परिस्थिति में वह कितनी धुँधली आधारहीन कल्पना रही होगी! माइका के लिए वह उसके इस अभिनव विश्वास का सीधा परिणाम था कि ईश्वर युद्ध का देवता नहीं न्याय का देवता है।

माइका की भविष्यद्वाणी पापाचरण से ममाहत, किंतु परम आस्तिकता के कारण 'सत्यमेव जयते' के निष्कंप विश्वासी एक मनीषी की उक्ति है।

बाइबिल यद्यपि गद्यवत् छपता है, तथापि उसमें गद्य पद्य दोनों ही हैं। हिब्रू कविता में छंद और तुक नहीं है, यद्यपि उसे मुक्तवृत्त कहना भी ठीक न होगा। निरे 'लययुक्त गद्य' से भी वह भिन्न है, क्योंकि उसमें संतुलित पदों अथवा वाक्य खंडों के सम प्रमाण विधान अथवा व्यूहन से वह स्वर संगति उत्पन्न होती है जो छंद का काम दे, और प्रतीक्षा की वह संपूर्ति होती है जो कि तुक का उद्दिष्ट है।

प्रस्तुत अनुवाद संपूर्ण वाणी का नहीं, केवल पूर्वार्ध का है।

—अनुवादक]

सुनो, मेरी विनती है सुनो, ओ याकोब वंश के कर्ताओं
और इज़राइल के राजनयिको ,

जिनको नियम से द्वेष है
और जो अखिल न्याय विधान को कलुषित करते हो।

जायन की मिट्टी को जिन्होंने रक्त से सींचा,
और यरुशलम को अन्याय से।
जिनके शास्ता विधान बनाते हैं पुरस्कार के लिए,
जिनके पुरोहित धर्मदीक्षा देते हैं भृति के लिए
जिनके द्रष्टा लक्षण विचारते हैं धन के लिए
किंतु जो फिर भी ईश्वर की दुहाई देकर कहते हैं—
'क्या वह स्वयं हमारे बीच वास नहीं करता? हम में पाप नहीं है।'

अतएव तुम्हारे कारण ही जायन विदीर्ण होगा, जैसे
हल चलाने से खेत विदीर्ण होता है,
और यरुशलम ध्वस्त होगा,
और राज प्रासाद हो जायेंगे जंगल के सूने ढूह!

किंतु अंतिम दिनों में

किंतु अंतिम दिनों में यह घटित होकर ही रहेगा—
कि ईश्वर का पर्वतोपम गेह—
पर्वतों के शिखरों से ऊँचा स्थापित होगा,
पर्वतों से ऊँची उसकी प्रतिष्ठा होगी,
और लोक उसकी ओर उमड़ेगा।
और अनेकों राष्ट्र उधर प्रवृत्त होकर कहेंगे—
'आओ, हम ईश्वर के भवन की ओर उठें,
याकोब के ईश्वर के भवन की ओर उठें।
वह हमें अपना मार्ग दिखायेगा
और हम उस मार्ग पर चलेंगे
क्योंकि जायन से धर्म का प्रवर्तन होगा
और यरुशलम से ईश्वर की वाणी मुखरित होगी।

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

साहित्य के दो पक्ष

मनुष्य जीवन के आदि काल में मनुष्य में जिस समय जिज्ञासा का भाव उत्पन्न हुआ उस समय वह अपने और अपने चारों ओर के जगत के बीच सम्बन्ध स्थापित करने लगा था। विश्व की अनंत विविधता से संवेष्टित उसे भय, त्रास, विस्मय आदि का अनुभव हुआ। प्रकृति की इन चमत्कारिणी शक्तियों से उसने आत्मरक्षा की चिंता की। चिंता करते हुए भी प्रकृति की इस भयंकर पीठिका में वह अपने 'अहं' के साथ निश्चल भाव में स्थित रहा। सृष्टि की योजना में और विषमताओं के बीच भी वह अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता था। यहीं से मनुष्य और उसके चारों ओर के वातावरण में 'दो' की भावना का जन्म हुआ। किन्तु इस विषमता के साथ साथ, इस दो की भावना के बीच में उसने प्रकृति के सौम्य और आह्लादकारी रूप का भी अनुभव किया। वृक्षों, लताओं और पुष्पों की कोमलता, विहगम के कलरव गान, हिममंडित शिखर, उज्ज्वल चाँदनी, आकाश की तारकावलि-खचित नीलिमा और स्वयं अपने अस्तित्व की विविधता में एकात्मता का अनुभव किया। उसने अपने को इस अनंत विश्व की एकप्राणता का अंश मात्र समझा, ससीम को असीम का एक अंग समझा। इतने पर भी मनुष्य अपने ससीम अस्तित्व की परिधि के मोह का परित्याग न कर सका। विश्व के साथ एकप्राणता का अनुभव करते हुए भी वह निजी व्यक्तित्व को बनाये रखना चाहता था। लेकिन जीवन की इस संकीर्णता को लेकर ही जीवन व्यतीत करना असंभव था। यहीं से अपूर्ण को पूर्ण में मिला देने की बलवती आकांक्षा का उसमें उदय हुआ। अपने निजी अस्तित्व का भार लिये हुए भी रागात्मिका-वृत्ति के धरातल पर स्थित विश्व की अनंत विभूतियों के साथ एकात्मानुभूति द्वारा सत्य और सौंदर्य की यही सृष्टि साहित्य में स्थान पाती रही है। बाह्य जगत और अंतर्जगत का यही अंतर्द्वन्द्व जो मनुष्य की अपनी अपूर्णता से उत्पन्न होता है साहित्य की मूल सृजनात्मक शक्ति है।

मनुष्य की क्षुद्रता या ससीमता और विश्व की व्यापकता या असीमता के घात प्रतिघात से जो सौंदर्य सृष्टि होती है, वेद की ऋचाएँ उसकी अनुपम उदाहरण हैं।

आगे मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्यता के पथ पर अग्रसर होता गया त्यों त्यों उसका जीवन जटिल से जटिलतर बनता गया। जिस सौंदर्यमयी प्रकृति की गोद में पल कर अपनी चेतना को साथ लिये हुए विकास मार्ग की श्रेणियाँ पार करता हुआ मनुष्य आगे बढ़ रहा था, उसमें वह भटक गया। विश्व में छिपे हुए सत्य की पूर्ण व्याख्या के लिये

और देश देश के बीच में ईश्वर विचारक होगा,
वह दूरव्यापी सबल राष्ट्रों की भर्त्सना करेगा,
और वे अपनी तलवारों से हलों के फाल बनायेंगे
बर्छियों से हँसिये,
राष्ट्र इतर राष्ट्रों पर तलवार न उठायेंगे
न रण कौशल की शिक्षा ही दी जायेगी।
उनका जन-जन बैठेगा अपनी वाटिका में, अपने तरु तले
निरापद, भयमुक्त;
क्योंकि ऐसा ही लोकेश्वर का आदेश है।
प्रत्येक जन अपने अपने ईश्वर के पथ का अनुसरण करेगा,
और हम सर्वदा और सर्वत्र अपने परमेश्वर के अनुसारी होंगे।
"उस दिन," ऐसा ईश्वर का आदेश है,
"जो पशु है उसे मैं चंगा कर दूँगा,
जो बहिष्कृत है उसे अपनाऊँगा,
जो आक्रांत है उसे निस्तारूँगा,
उस दिन, जो पशु था उसे बनाऊँगा अग्रणी
और जो परित्यक्त था उसे बना दूँगा एक समर्थ राष्ट्र।"

और अपने पर्वत शिखर पर विराजमान ईश्वर उनका शास्ता होगा
उस काल से युग युगांत के लिए।

['अज्ञेय' द्वारा अनुवादित]

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

साहित्य के दो पक्ष

मनुष्य जीवन के आदि काल में मनुष्य में जिस समय जिज्ञासा का भाव उत्पन्न हुआ उस समय वह अपने और अपने चारों ओर के जगत् के बीच सम्बन्ध स्थापित करने लगा था। विश्व की अज्ञात विविधता से सवेष्टित उसे भय, त्रास, विस्मय आदि का अनुभव हुआ। प्रकृति की इन त्रासकारिणी शक्तियों से उसने आत्मरक्षा की चिंता की। चिंता करते हुए भी प्रकृति की इस भयकर पीठिका में वह अपने 'अह' को बनाये निश्चल भाव से स्थित रहा। सृष्टि की योजना में अनेक विषमताओं के बीच भी वह अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता था। यहीं से मनुष्य और उसके चारों ओर के वातावरण में 'दो' की भावना का जन्म हुआ। किन्तु इस विषमता के साथ साथ, इस 'दो' की भावना के बीच में उसने प्रकृति के सौम्य और आह्लादकारी रूप का भी अनुभव किया। वृक्षों, लताओं और पुष्पों की कोमलता, विहगम के कलरव गान, हिममडित शिखर, उज्ज्वल चाँदनी, आकाश की तारकावलि-खचित नीलिमा और स्वय अपने अस्तित्व की विविधता में एकात्मता का अनुभव किया। उसने अपने को इस अनत विश्व की एकप्राणता का अश मात्र समझा, ससीम को असीम का एक अग समझा। इतने पर भी मनुष्य अपने ससीम अस्तित्व की परिधि के मोह का परित्याग न कर सका। विश्व के साथ एकप्राणता का अनुभव करते हुए भी वह निजी अस्तित्व को बनाये रखना चाहता था। लेकिन जीवन की इस सकीर्णता को लेकर ही जीवन व्यतीत करना असभव था। यहीं से अपूर्ण को पूर्ण में मिला देने की बलवती आकाक्षा का उसमें उदय हुआ। अपने निजी अस्तित्व का भाव लिये हुए भी रागात्मिका-वृत्ति के धरातल पर स्थित विश्व की अनत विभूतियों के साथ एकात्मानुभूति द्वारा सत्य और सौंदर्य की यही सृष्टि साहित्य में स्थान पाती रही है। वाह्य जगत और अतर्जगत का यही अतर्द्वन्द्व जो मनुष्य की अपनी अपूर्णता से उत्पन्न होता है साहित्य की मूल सृजनात्मक शक्ति है।

मनुष्य की क्षुद्रता या ससीमता और विश्व की व्यापकता या असीमता के घात प्रतिघात से जो सौंदर्य सृष्टि होती है, वेद की ऋचाएँ उसकी अनुपम उदाहरण हैं।

आगे मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्यता के पथ पर अग्रसर होता गया त्यों त्यों उसका जीवन जटिल से जटिलतर बनता गया। जिस सौंदर्यमयी प्रकृति की गोद में पल कर अपनी चेतना को साथ लिये हुए विकास मार्ग की श्रेणियों पार करता हुआ मनुष्य आगे बढ रहा था, उससे वह भटक गया। विश्व में छिपे हुए सत्य की पूर्ण व्याख्या के लिये

जीवन के प्रथम विकास तक ही सीमित रहना वैसे भी असंभव था। नियमानुसार वह उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर होता गया। तब उसने नवोत्पन्न उलझनों को सुलझाने के लिए धर्म, समाज शास्त्र राजनीति आदि का आश्रय ग्रहण किया। जीवन के विविध सूत्रों को राज्य की संगठित शक्ति के केंद्र में स्थापित करने का वह प्रथम प्रयास था। जीवन की विषमताओं पर विजय प्राप्त करते हुए उसने अपनी शक्ति का शतधा प्रसार किया। कौन जाने उसका यह क्रम कब तक अविरल रूप से चलता रहेगा।

विकास के साथ साथ मनुष्य का जीवन क्रम भी बदला। तरह तरह की उत्पादन शक्तियों का जन्म हुआ। मनुष्य के विचारों और भावनाओं में अनेक परिवर्तन हुए। उसने जीवन और अपने चारों ओर के वातावरण के एक भिन्न दृष्टि से देखना सीखा। उसके अपने किये हुए संगठन से अनेक उलझनें पैदा हुईं। साथ ही प्रत्येक युग में नयी नयी समस्याएँ उत्पन्न हुईं।

जिस प्रेरणा से वेद के ऋषि सौंदर्य सृष्टि करने में समर्थ हुए थे उसी प्रेरणा का वशीभूत हो मनुष्य ने साहित्य में विविध भावों की अभिव्यक्ति की। साहित्य ने उसके वातावरण की छाया में पालित पोषित होकर, और उसकी हृदय वृत्ति के नाना रसों से सिंचित होकर, प्रत्येक युग में नवीन रूप धारण किया।

वेद, रामायण, महाभारत तथा परवर्ती संस्कृत साहित्य से यह बात प्रत्यक्ष है। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से भी यही बात प्रमाणित होती है।

महाराज हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद देश छोटे छोटे राज्यों की अनेक टुकड़ियों में बँट गया था। राजा आपस में ही लड़ भिड़कर अपनी शक्ति का ह्रास करने लगे थे। उस समय कवियों ने भी अपने आश्रयदाताओं का वीर गान कर अपने को कृतकृत्य समझा। वे यह न सोच सके कि उनकी वाणी देश के व्यापक हित के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगी या अकल्याणकारी। देश की तत्कालीन अवस्थाओं में यही संभव था। इसके बाद देश में भक्ति का जन्म हुआ। यह आंदोलन देश का महान आंदोलन था जिसका नेतृत्व जनता के हाथ में था। कबीर, तुलसी, सूर, नामदेव, तुकाराम चैतन्य आदि की वाणी से देश में एक नये जीवन का संचार हुआ। इन कवियों की वाणी में परमात्म दर्शन की ही झलक नहीं है बरन् वह अपने युग की विविध समस्याओं को संवेष्टित किये हुए है। एक विदेशी धर्म के आघात से देशी जीवन का मेरुदंड झुक जाने पर भी टूटा नहीं था। इसका श्रेय भक्ति आंदोलन को है। उस समय पिछले सामंतवादी युग का प्रकाश बुझ गया था। इसके बाद कालगति से सामंत वर्ग और जनता दोनों में ही निश्चेष्टता आ गई। उनमें अपनी अपनी पूर्वकालीन सजीविता न रह गई। फलत कवियों ने जनता के कल्याण पथ का सृजन करने के बजाय अपने अपने आश्रयदाताओं की वासना की पूँजी से व्यापार किया। वनिता कामिनी ने अपने भ्रूविलासों से उनका

मन बहलाया। सत्य की अवतारणा करनेवाले कवियों ने युग की कामुकता की पंकिलता में कमल खिलाये। मनुष्य की पाशविकता के सहारे उन्होंने रसों का असीम विस्तार किया। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह युग अपने पूर्ववर्ती युग की प्रतिक्रिया के रूप में था। लेकिन कुछ भी हो, कविता ने अपने युग का साथ दिया। फिर जिस समय देश अवनति के कदम में पड़ा हुआ जीवन व्यतीत कर रहा था उस समय पश्चिम की एक सजीव जाति ने उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अपने साम्राज्य ध्येय की पूर्ति के साथ साथ उसने कुछ आदर्श स्थापित किये जिनसे मोहित होकर देश के उच्च वर्ग ने उन्हें सहयोग प्रदान किया। इस जाति की स्वार्थपरता ने साथ-साथ उसके ये उच्च आदर्श ही उसे संसार में एक सफल साम्राज्य की शक्ति बनाने में समर्थ हो सके हैं। पतनोन्मुख जाति के लिए यह पश्चिमी जाति जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण लेकर आयी जिसका देश पर गहरा प्रभाव पड़े बिना न रह सका। भारतीय इतिहास का एक नया परिच्छेद प्रारम्भ हुआ और कवियों ने जीवन की परिवर्तित परिस्थिति के साथ पूर्ण योग दिया। कहना न होगा यह क्रम अभी बदला नहीं वरन् और भी तीव्र गति से जारी है।

जीवन और साहित्य के इस पारस्परिक घनिष्ट संबंध के अध्ययन से हम एक और महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

सौंदर्य संबंधी समस्या के अंतर्गत साहित्य को ललित-कला का एक रूप माना ही जाता है। जीवन में सत्य की खोज के लिए जगत के विविध रूपों का वर्गीकरण किया जाता है। किंतु ऐसा वर्गीकरण सौंदर्य सृष्टि के लिए अनुपयोगी प्रमाणित होगा। सौंदर्य सृष्टि के लिये तो हम जीवन को अखण्ड रूप में देखना चाहिये। जीवन की व्यापकता और उसकी अभिव्यक्ति, मानव हृदय और चरित्र और उनसे एक अज्ञात शक्ति की सृष्टि से जो आनंद की वीणा अहर्निश झंकृत होती रहती है वही कला और साहित्य की सौंदर्यमयी सृष्टि के लिये उपयुक्त उपकरण है। प्रकृति के अनंत वैभव और जीवन की विभिन्नता को स्वर का माधुर्य प्रदान करना साहित्य की चिरंतन चेष्टा है। लेकिन साहित्य के इस लोकोत्तर रूप के साथ-साथ उसके उपयोगी रूप का भी घनिष्ट संबंध है। सामाजिक जीवन और उसकी विभिन्न समस्याओं को सुलझाने और उन पर प्रकाश डालनेवाला साहित्य का उपयोगी पक्ष भी कम महत्व नहीं रखता। अपने चारों ओर के वातावरण को स्वीकार कर विभिन्न आदर्शों, भावनाओं, आवश्यकताओं, अभाव पूर्तियों तथा अन्य संख्यातीत विविधताओं का मूल्यांकन कर उन्हें प्रतिष्ठित करना और जीवन को गतिशील बनाना साहित्य के लिये परमावश्यक है। संक्षेप में सूक्ष्म और स्थूल, अंतर्जगत और बाह्य जगत की समस्याओं का समन्वय कर आनंद की सृष्टि के साथ साथ व्यावहारिक दृष्टिकोण से जीवन के लिये, समाज के लिये उपयोगी साधन सिद्ध होना भी साहित्य का स्पष्ट लक्ष्य होना चाहिये।

किंतु प्राय देखा जाता है कि साहित्यकार या तो साहित्य के आनंद रूप पर अधिक ध्यान देता है या उसके उपयोगी रूप पर यह ठीक है कि साहित्य के एक या दूसरे रूप पर ही अधिक ध्यान देना किसी ध्येय या परिस्थिति पर निर्भर रहता है। लेकिन साहित्यकार का अपनी परिस्थिति या वातावरण के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण उसके महत्व को बहुत सीमित बना देता है। उसकी अनुभूति जहाँ अखंड, व्यापक, समग्र और सामंजस्य रूप से विद्यमान रहती है वहाँ साहित्य के दोनों रूपों में संबंध विच्छेद का अभाव रहता है। इन दोनों रूपो के अलग होते ही साहित्य का मूल्य गिर जाता है।

हिंदी साहित्य के अध्ययन से इस कथन की पुष्टि होते देर नहीं लगती। वीर गाथाएं में सामंतों की गाथाएँ हैं। जीवन के कठोर धरातल पर स्थित होने के साथ साथ इन ग्रंथो में मानव जीवन के उन उच्च स्तरों का निदर्शन नहा है जहाँ मनुष्य आनंद विभोर हो पुलकित हो उठता है। उनपर उनके वातावरण का ही प्रभाव प्रधान है। आल्हा एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें मानव के अंतर्जगत को स्पर्श कर लेने की शक्ति है। इसीलिये अन्य वीर गाथाओं की अपेक्षा आल्हा जनता के जीवन में घुलमिल गया है। तुलसी साहित्य भी आनंद और उपयोगिता के सामंजस्य के कारण ही आज भी देश के जीवन में स्थायित्व प्राप्त किए हुए है। सूरदास द्वारा अभिव्यक्त अनुभूति मानव जीवन की शाश्वत अनुभूति है। कबीर में समाज सुधार और रहस्यवाद के चिरंतन सत्य का सुंदर सम्मिश्रण है। मीरा की स्निग्ध वाणी में नारी हृदय की मूल एवं सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यंजना है। रीति कालीन कवियों की कला जीवन से दूर है। भारतेंदु-युग के कवियों का स्वर जीवन का स्वर होते हुए भी कलात्मक दृष्टि से अधिक महत्व पूर्ण स्थान नहीं पा सकता। फलतः इन पिछले दो कालों के कवियों की रचनाओं का साहित्य के इतिहास में स्थान है, जीवन में नहीं। तुलसी जीवन के कवि थे, इसीलिये उनके मानस में जीवन के दोनों पक्षों का सुन्दर सामंजस्य है। आनंद और उपयोगिता वैसे भी जीवन के दो प्रधान और प्रमुख पक्ष हैं। इन दोनों पक्षों के मिल जाने पर ही जीवन की एक अखंड और अजस्र धारा प्रवाहित होती है। वास्तविक जीवन में हम इन दोनों पक्षों को एक साथ न देख पाते हों यह दूसरी बात है। किंतु इससे उनके महत्व और अस्तित्व पर आघात नहीं पहुँचता। साहित्य जीवन को व्यापक दृष्टि से अखंड रूप में देखता है। उनमें से एक का भी अभाव जीवन को खंड रूप में देखने के बराबर होगा।

इन दोनों पक्षों के सामंजस्य का महत्व न समझ सकने के कारण ही आज हिंदी में व्यर्थ का वितंडावाद उठ खड़ा हुआ है।

एक पक्ष है जो संवेदनात्मक दृष्टि से मानव जीवन के केवल सूक्ष्म जगत को ही अपनाना चाहता है। सूक्ष्म जगत का महत्व होते हुए भी वह पूर्ण सत्य नहीं है। इस प्रकार का काव्य दर्शन बनने की ओर अधिक उन्मुख हो जाता है और उसमें

हमें रचयिता के अनुभव मात्र के दर्शन होते हैं न कि अनुभवजन्य परिणाम के। इस साहित्य में चिन्मय मानव जीवन के केवल एक पक्ष का आभास प्राप्त होता है। इस साहित्य के स्रष्टा दीप को अकंपित और अचंचल जलाना चाहते हैं। पथ ही उनका निर्वाण है, हृदय की शून्यता को लिये हुए वे किसी तिमिराच्छन्न अज्ञात पथ के पथिक हैं, जिनके अश्रुओं में प्रलय पयोधि तरंगित होता रहता है, जिनके प्राण आहत हैं और स्वर सधान टूटा हुआ है, जिनके प्यास से भरे नेत्र अभिसार करते रहते हैं और जो अनंत नींद का वरदान माँगते हैं। इस प्रवृत्ति में सौंदर्य की अमिट पिपासा है, काव्य प्रतिभा है। किंतु इसमें 'कला कला के लिये' की ओर झुकाव पाया जाता है। चिंतन के क्षणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। जिस व्यापक जीवन के ये क्षण अंग हैं उससे अलगाव पाया जाता है। इन क्षणों को छोड़कर वास्तविक जीवन के निकट उनका महत्व अधिक नहीं। इसीलिये जीवन में उपयोगिता के प्रति यह साहित्य उदासीन पाया जाता है। उसका क्षेत्र व्यापक होते हुए भी एक प्रकार से संकुचित ही है क्योंकि वह जीवन के केवल एक पक्ष को लेकर चलता है, और यह पक्ष पूर्ण जीवन नहीं है। सामाजिक जीवन के विधान में, सूक्ष्म जगत केवल एक खंड भाग का प्रदर्शन करता है।

दूसरा पक्ष है जो केवल स्थूल जगत तक ही अपनी कलात्मक सृष्टि को सीमित रखना चाहता है। यह साहित्य को उपयोगिता मात्र की दृष्टि से देखता है। सूक्ष्म जगत वाला साहित्य और स्थूल जगत वाला साहित्य दोनों ही जीवन में साम्य स्थापित कर अपने ध्येय की पूर्ति करना चाहते हैं। किंतु एक में दूसरे पक्ष का निर्वासन पाया जाता है। केवल उपयोगिता तक सीमित रहनेवाला साहित्य एक विशेष कार्यक्रम का अनुचर बनना चाहता है। साथ ही जीवन के आर्थिक पहलू पर जोर देते हुए इस प्रकार के साहित्य निर्माता भाव परंपरा, संस्कृति, काव्य प्रवाह आदि बातें भूल जाते हैं और इसीलिये वे कला के केवल आनंदमय स्वरूप को भी नहीं मानते। साहित्य में अतीत को भूलजाना असंभव है लेकिन अतीत के पर्दे में ही मुँह छिपाये रहना साहित्य के लिये घातक है। केवल युगधर्म का अनुसरण करना प्रगति अवश्य है किंतु युगधर्म को अपनी भुजाओं में सबलित करते हुए युग से ऊपर उठ जाना महानता है। केवल युगधर्म पार्थिव है, इसलिये विनाशवान है। युगधर्म को लिये हुए, युग युग का धर्म अपार्थिव है इसलिये अमर है।

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि एक जीवन के एक पक्ष को लेकर चलता है तो दूसरा जीवन के दूसरे पक्ष को। साहित्य के लिये यही आंशिक दृष्टिकोण तरह-तरह की समस्याएँ पैदा करता और साहित्य के मूल्य को गिरा देता है।

वास्तव में साहित्य के आनंदमय स्वरूप और उपयोगी स्वरूप के अंतर्गत मनुष्य की अन्तस्तम प्रवृत्तियों और उसके वाह्य वातावरण के सुंदर सामंजस्य से ही साहित्य मानवता के लिये चिरंतन आनंद की वस्तु होने के साथ साथ युगधर्म का पालन भी कर सकता है।

हिंदी साहित्य-प्रगति

['प्रतीक' मे समालोचना के लिये समय समय पर नयी हिंदी पुस्तकें हमारे पास आती हैं। हिंदी मे प्रकाशन जिस तेजी से बढ रहा है, उसे देखते कोई भी पत्र सब पुस्तको की समीक्षा नहीं कर सकता, 'प्रतीक' जैसा सावधि सग्रह तो और भी नहीं। पुस्तको की चलती आलोचना करके एक साथ ही पत्र और पुस्तक दोनों का 'पाप काटना' पाठक के प्रति गुरु अपराध है, ऐसा हम मानते हैं। इसलिये हम अपने पास आयी हुई पुस्तकों की परिचयात्मक सूची देकर ही सतोष करेंगे। जिन कतिपय ग्रथों की आलोचना आगामी सख्याओं मे दे सकने की आशा है, उन पर * चिह्न लगा है।

'प्रतीक' मे आलोचनार्थ पुस्तक की एक ही प्रति भेजनी चाहिये। यदि आलोचना हो सकेगी, तब आवश्यकतानुसार एक या अधिक प्रतियाँ और मँगायी जा सकेंगी।

—सपादक]

अनुक्रम —पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशक, पृष्ठ-सख्या, मूल्य, परिचय।

हमारी समस्याएँ श्रीमती राजकुमारी निंदल, हिंद किताब्स, बबई, ८+६०, १॥)

गृहस्थ भारतीय नारी के समस्याओं पर एक स्त्री के विचार।

हमारी कपडे की समस्या डा॰ जगदीशचद्र जैन, हिंद किताब्स, बबई, ८०, १॥)

यथानाम। आँकड़ों से परिपुष्ट।

सिकदर श्री सुदर्शन, हिंद किताब्स, बबई ८+१६६, २॥)

इसी नाम के चलचित्र पर आधारित तीन अकों का नाटक, सजिल्द।

उपहास हसराज 'रहबर', इडिया पब्लिशर्स, इलाहाबाद, १८५, २॥)

पद्रह कहानियाँ।

हिंदी काव्य में प्रगतिवाद विजयशकर मल्ल, सरस्वती मदिर बनारस, १५४, २।)

नूतन आलोक अनुवादक अमृतराय, हिंदुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद २१०, २॥)।

१४ अनुवादित विदेशी कहानियाँ।

नदिनी चद्रकुवर बर्त्वाल, एजुकेशनल पब्लिशिंग कपनी लखनऊ, ७६, १।)

खड काव्य।

जीवन के पहलू   अमृतराय, हिंदुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, १८६, २)
* २३ कहानियाँ/स्केच।

* महाकाल   अमृतलाल नागर, भारती भंडार, इलाहाबाद, २५२, ३) सजिल्द।
बंगाल के दुर्भिक्ष संबंधी उपन्यास।

* गीत काव्य   रामखेलावन पांडेय, ज्ञानमंडल, काशी, ३८६, ५) सजिल्द।

* काव्य-दर्पण   रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय बाँकीपुर, ५७४, १०) सजिल्द।
नवीन हिंदी उदाहरणों से युक्त साहित्य शास्त्र।

महादेवी की रहस्य-साधना   लेखक प्रकाशक, विश्वंभरनाथ मानव, मुरादाबाद, १८८, २)

अवसाद   लेखक प्रकाशक विश्वंभरनाथ मानव, मुरादाबाद, ५२, ।।।)
कविता-संग्रह।

निराधार   लेखक प्रकाशक, विश्वंभर नाथ मानव, मुरादाबाद, १२६, १)
खंडकाव्य।

प्रगतिवाद की रूपरेखा   शिवचंद्र, किताब महल, इलाहाबाद, ३००, ५)
निबंध संग्रह।

झरोखे   सुदर्शन, हिंद किताब्स, बंबई, ८०, १।।)
कहानियाँ।

गदगी   छेदीलाल गुप्त, पुष्पसाहित्य मंदिर, कलकत्ता, १४६, २)

स्वप्न और सत्य   ब्रजमोहन गुप्त, साहित्यकार संसद, प्रयाग, १३४ १।।)
कहानियाँ।

गीतिमाला   सं० रामविलास शर्मा, हिंदी ज्ञानमंदिर, बंबई, ८०, दाम नहीं लिखा।
कबीर से हरिश्चंद्र तक के चुने हुए गीत।

एक अपरिचित स्त्री के पत्र   अनु० रामकुमार, हिंदी ज्ञानमंदिर बंबई, ८२, १)
स्टीफेन ज्वाइग के लघु उपन्यास का अनुवाद।

इंसान और अन्य एकांकी   विष्णु प्रभाकर, हिंदी ज्ञानमंदिर बंबई, ६०, १।।)

माता पिता खुद एक समस्या   एम० नील, अनु० मनोजकुमार मेहता, हिन्दी ज्ञान मंदिर बंबई, १३८, ३)

कवि परिपाटी • दिवाकर त्रिपाठी 'मणि', विद्याभास्कर बुकडिपो, काशी , २६२ , ४)

४२ विद्रोह शम्भुनाथ सिंह , साधना मंदिर, काशी , ११२ , १।।।)

आचार्य नरेंद्रदेवकी भूमिका ।

पुरुष-सूक्त संपूर्णानंद , शारदा प्रकाशन, काशी , ६४ , १।)

सूक्त और श्रुतिप्रभा टीका ।

आदि और अंत विष्णु प्रभाकर , प्रदीप प्रकाशन, मुरादाबाद , १४६ १।।)

आठ कहानियाँ ।

रहमान का बेटा विष्णु प्रभाकर , नवयुग साहित्य सदन इंदोर , २१० , २।।)

उन्नीस राजनीतिक कहानियाँ ।

इस अंक के लेखक

गिरिजाकुमार माथुर कवि, आल इंडिया रेडियो लखनऊ में हैं। प्रस्तुत कविता काश्मीर के जन आंदोलन से प्रेरित होकर लिखी गयी है।

गुलाबराय हिंदी की वयोवृद्ध सेवी, अध्यापक और आलोचक, भोले निर्द्वंद विनोद से पूर्ण गद्य आपकी विशेषता है।

चंद्रकुँवर बर्त्वाल गढवाल के इस तरुण कवि का क्षय से असमय देहांत हो गया, पर उसकी बहुमुखी और उर्वरा प्रतिभा बहुत-सी सामग्री छोड़ गयी है जो अभी अप्रकाशित है। एक खंड-काव्य 'नंदिनी' प्रकाशित हुआ है।

जैनेंद्रकुमार इधर लेखन सन्यासी, इस गहरे चिंतक और सूक्ष्म सत्यान्वेषी लेखक के उपन्यासों का हिंदी में अद्वितीय स्थान है। प्रस्तुत लेख से उसकी मूल प्रेरणाओं और आदर्शों को समझने में सहायता मिलेगी।

देवराज साहित्य-पारखी और कवि, प्रयाग विश्वविद्यालय के डी०फिल०, राजेंद्र कालेज छपरा के आचार्य।

'बच्चन' प्रसिद्ध कवि, प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापक, गांधीजी पर लिखी हुई शताधिक कविताओं का संग्रह तय्यार हो रहा है।

भगवतशरण उपाध्याय अन्वेषी इतिहास वेत्ता और कहानी लेखक, आपने ऋग्वेद काल का विशेष अध्ययन किया है और उसी की भूमिका लेकर कहानियाँ भी लिखी हैं। कालिदास युग पर एक अनुसंधान ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। ऐतिहासिक निबंधों का एक संग्रह भी छप रहा है।

मैथिलीशरण गुप्त महाभारत की वस्तु लेकर जो नया काव्य गुप्तजी लिख रहे हैं, उसी का एक अंश यहाँ दिया गया है।

रघुकुल तिलक राजनीतिक कार्य-कर्त्ता, युक्तप्रांतीय व्यवस्थापिका के सदस्य। कम लिखते हैं, लेकिन साफ मँजी हुई भाषा में और सूक्ष्म व्यंग्य हास्य की पुट देकर। कई बरस बाद यह कहानी प्रकाशित हो रही है।

कवि परिपाटी . दिवाकर त्रिपाठी 'मणि', विद्याभास्कर बुकडिपो, काशी ; २६२ ; ४)

४२ विद्रोह शम्भुनाथ सिंह , साधना मंदिर, काशी , ११२ , १।।)
आचार्य नरेंद्रदेवकी भूमिका ।

पुरुष-सूक्त संपूर्णानंद , शारदा प्रकाशन, काशी , ६४ , १)
सूक्त और श्रुतिप्रभा टीका ।

आदि और अंत विष्णु प्रभाकर , प्रदीप प्रकाशन, मुरादाबाद , १४६ १।।)
आठ कहानियाँ ।

रहमान का बेटा विष्णु प्रभाकर , नवयुग साहित्य सदन इंदोर , २१० , २।।)
उन्नीस राजनीतिक कहानियाँ ।

इस अंक के लेखक

गिरिजाकुमार माथुर कवि, आल इंडिया रेडियो लखनऊ में हैं। प्रस्तुत कविता काश्मीर के जन आंदोलन से प्रेरित होकर लिखी गयी है।

गुलाबराय हिंदी की वयोवृद्ध सेवी, अध्यापक और आलोचक, भोले निर्दोष विनोद से पूर्ण गद्य आपकी विशेषता है।

चंद्रकुँवर बर्त्वाल गढवाल के इस तरुण कवि का क्षय से असमय देहांत हो गया, पर उसकी बहुमुखी और उर्वर प्रतिभा बहुत-सी सामग्री छोड़ गयी है जो अभी अप्रकाशित है। एक खंड काव्य 'नंदिनी' प्रकाशित हुआ है।

जैनेंद्रकुमार इधर लेखन सन्यासी, इस गहरे चिंतक और सूक्ष्म सत्यान्वेषी लेखक के उपन्यासों का हिंदी में अद्वितीय स्थान है। प्रस्तुत लेख से उनकी मूल प्रेरणाओं और आदर्शों को समझने में सहायता मिलेगी।

देवराज साहित्य-पारखी और कवि, प्रयाग विश्वविद्यालय से डी०फिल०, राजेंद्र कालेज छपरा के आचार्य।

'बच्चन' प्रसिद्ध कवि, प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापक, गांधीजी पर लिखी हुई शताधिक कविताओं का संग्रह तय्यार हो रहा है।

भगवतशरण उपाध्याय अन्वेषी इतिहास वेत्ता और कहानी लेखक, आपने ऋग्वेद काल का विशेष अध्ययन किया है और उसी की भूमिका लेकर कहानियाँ भी लिखी हैं। कालिदास-युग पर एक अनुसंधान ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। ऐतिहासिक निबंधों का एक संग्रह भी छप रहा है।

मैथिलीशरण गुप्त महाभारत की वस्तु लेकर जो नया काव्य गुप्तजी लिख रहे हैं, उसी का एक अंश यहाँ दिया गया है।

रघुकुल तिलक राजनीतिक कार्यकर्ता, युक्तप्रांतीय व्यवस्थापिका के सदस्य। कम लिखते हैं, लेकिन साफ मँजी हुई भाषा में और सूक्ष्म व्यंग्य-हास्य की पुट देकर। कई बरस बाद यह कहानी प्रकाशित हो रही है।

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय डी० फिल०, प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में हैं।

सत्यवती मलिक कला-संवेदना संपन्न कहानी लेखिका, कुछ समय पहले काश्मीर घूमकर आयी हैं।

सत्येंद्र शरत् नवयुवक कहानी और एकाकी लेखक, एक कहानी संग्रह छपा है।

'सुमन' कवि, प्रोफेसर, अध्येता। प्रतीक ४ में गांधीजी की वर्षगाँठ पर समर्पित की गयी कविता छपी थी।

राजशेखर वसु बँगला में व्यग्य, हास्य के सुप्रसिद्ध लेखक, रासायनिक। छद्मनाम 'परशुराम' से हिंदी के बहुत-से पाठक परिचित होंगे—इसी नाम से उनके दो-तीन कहानी-संग्रह हिंदी में छपे हैं।

प्रस्तुत संख्या में पृ० १६ के सामने जो फोटो प्रकाशित हुए हैं, उनमें से एक—गांधीजी की अस्थियों के जुलूस का—श्रीसाँवल वर्मा द्वारा लिया गया था, दूसरा—अस्थि प्रवहण के समय वायुयान से पुष्पवर्षा का—श्रीअगेल द्वारा। दोनों के सौजन्य से ही चित्रों का प्रकाशन संभव हुआ है।